प्राचीन भारत
के
आधुनिक इतिहासकार

लेखक
डॉ० हीरालाल गुप्त
एम० ए०, पी एच० डी०
प्राध्यापक, बाबा राघवदास भगवानदास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
आश्रम बरहज, देवरिया (उ० प्र०)

आमुख
प्रो० डॉ० शिवाजी सिंह
एम० ए०, पी एच० डी०
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ० प्र०)



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

PRACHIN BHARAT KE ADHUNIK ITIHASKAR

Modern Historians of Ancient India

by

Dr H L Gupta

1991

ISBN 81-7124-073-9

प्रथम संस्करण १९९० ई०

मूल्य तीस रुपये

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी

मुद्रक

दीप्ति प्रिण्टर्स, लहरतारा वाराणसी

आमुख

इतिहास अन्ततः इतिहासकार की मानसिक सृष्टि होता है। किसी देश-काल के सन्दर्भ में वास्तविक जगत में जो घटनाएँ और प्रक्रियाएँ घटित एवं प्रतिफलित होती हैं उनसे ऐतिहासिक यथार्थ का निर्माण होता है। इतिहासकार इसी ऐतिहासिक यथार्थ के तानो बानो से इतिहास का निर्माण करता है। ऐतिहासिक यथार्थ में किसी पैटर्न, प्रणाली या प्रतिमान की तलाश कर इतिहासकार उसे पाठक के सम्मुख बोधगम्य और फलप्रद बनाता है। अतः यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए कि इतिहास के निर्माण में ऐतिहासिक यथार्थ के मौन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण इतिहासकार की वाणी होती है। यही कारण है कि अब इतिहास का अध्येता इतिहास के साथ साथ इतिहासकार का भी अध्ययन करने में अधिकाधिक सचेष्ट है।

ऐतिहासिक यथार्थ इतिहासकार के मन मस्तिष्क से गुजर कर ही इतिहास का स्वरूप ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में इतिहासकार की भूमिका उस दर्पण के तुल्य होती है जिसमें वास्तविक जगत की वस्तुओं के प्रतिबिम्ब बनते हैं। दर्पण जितना ही त्रुटिहीन बना होता है, प्रतिबिम्ब उतने ही अधिक स्पष्ट और वस्तु के अधिकाधिक समरूप बनते हैं जबकि दर्पण के त्रुटिपूर्ण होने पर प्रतिबिम्ब विकृत हो जाते हैं। इसी प्रकार इतिहासकार का कार्य ऐतिहासिक यथार्थ का अर्थपूर्ण चित्र प्रतिबिम्बित करना होता है किन्तु इस सन्दर्भ में उसका दायित्व दर्पण के कार्य से कहीं अधिक दुष्कर है। दर्पण का कार्य तो मात्र वस्तु को अधिकाधिक यथावत रूप में प्रतिबिम्बित करना है किन्तु इतिहासकार जिस ऐतिहासिक यथार्थ का पुनर्निर्माण करता है उसका अपना कोई मौलिक स्वरूप नहीं होता जिसे वह यथावत अभिव्यक्त कर सके। वर्षा के पश्चात आकाश में छितराये मेघों में जैसे हम विभिन्न आकृतियाँ तलाशते हैं बहुत कुछ उसी प्रकार इतिहासकार ऐतिहासिक यथार्थ के बिखरे और असंगठित सामग्री के बीच एक अर्थपूर्ण धारावाहिता की खोज में लगा रहता है। आकाश में छाये बादलों में हमें किसी पशु की आकृति दिखाई देती है या पवन की, यह बादलों की स्थिति से अधिक हमारे मानसिक प्रक्षेपण पर निर्भर करता है। लगभग उसी प्रकार ऐतिहासिक यथार्थ का क्या रूप है और वह किस दृष्टि से अर्थपूर्ण है, यह

ऐतिहासिक यथार्थ की अनगढ़ कच्ची सामग्री से अधिक इतिहासकार की अपनी सोच और सूझ पर आश्रित है।

यही कारण है कि किसी देश और काल के ऐतिहासिक यथार्थ एक होते हुए भी उसके इतिहास के पुनर्निर्माण के प्रयास अनेक और बहुधा परस्परविरोधी रूपों में उपलब्ध होते हैं। इतिहास की यह अनेकता वस्तुतः इतिहासकार की इतिहास दृष्टि के विभेद से उत्पन्न होती है। अतएव किसी इतिहासकार की कृति अर्थात् उसके द्वारा रचित इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उस इतिहासकार के व्यक्तित्व और इतिहास बोध का समझना आवश्यक हो जाता है।

इतिहास की रचना प्रक्रिया में इतिहासकार के व्यक्तित्व की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इतिहासकार की अपनी इतिहास-दृष्टि भी उसके इसी व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग है जो एक अत्यन्त सश्लिष्ट प्रक्रिया से निर्मित होती है। जन्म लेने से बड़े होने और इतिहासकार बनने तक व्यक्ति एक विशिष्ट प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से होकर गुजरता है। वह कब और कहाँ पैदा हुआ, उसे किस प्रकार की शारीरिक और बौद्धिक विरासत प्राप्त हुई, किस प्रकार के मित्रों के बीच वह खेला और बड़ा हुआ, उसे कैसे शिक्षक मिले, उसने किस प्रकार की पुस्तकों का अध्ययन किया, किन सामाजिक हलचलों और वैचारिक ऊहापोहों से वह आन्दोलित हुआ, इन और इसी प्रकार की समस्त परिस्थितियों की उसके मन मस्तिष्क से हुई क्रिया प्रतिक्रिया की अत्यन्त सश्लिष्ट प्रक्रिया के फलस्वरूप ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्मित होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और ऐतिहासिक यथार्थ के बीच भी क्रिया प्रतिक्रिया का एक गतिशील सन्तुलन स्थापित रहता है जो उसकी अपनी इतिहास दृष्टि का सृजन करता है।

किसी भी लेखक की रचना प्रक्रिया के समान इतिहासकार की रचना प्रक्रिया भी बहुस्तरीय होती है। जिन तथ्यों को वह अपनी कृति में व्यक्त या रेखांकित करता है उसका एक अंश वह होता है जो उसने पूर्वसूरियों या अग्रजों से प्राप्त किया होता है। उसकी कृति का यह भाग काल की दृष्टि से सामान्यतः उसके पूर्ववर्ती होता है। कृति का एक दूसरा अंश समकालीन होता है जो उसकी अपनी और अपने समकालीन इतिहासकारों की दृष्टि का प्रतिफल होता है। भूत और वर्तमान के साथ साथ भविष्य भी उसकी कृति की संरचना को प्रभावित करता है। इतिहास का पुनर्निर्माण करते समय इतिहासकार लेखक के साथ साथ एक पाठक की भी भूमिका निभाता चलता है। उसकी कृति का कैसा प्रभाव

पड़ेगा, यह पाठक वर्ग द्वारा कितना स्वागत योग्य होगा, इस प्रकार की कल्पित सम्भावनाओं के रूप में भविष्य भी उसकी रचना प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

इतिहासकार के व्यक्तित्व, उसकी इतिहास दृष्टि तथा उसके पूर्ववर्ती समकालीन एवं परवर्ती चिन्तनो के अतिरिक्त कई अन्य कारक भी उसकी रचना-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इतिहासकार की शोध पद्धति आगमिक है अथवा निर्गमिक, उसके शोध को व्याप्ति व्यापक है अथवा सूक्ष्म, वह घटना की व्याख्या कर रहा है या प्रक्रिया का विश्लेषण, उसके प्रतिमान सचेतन हैं या अवचेतन, उसकी सामाजिक दृष्टि व्यक्ति-परक है या समष्टि परक, उसकी राजनीतिक प्रतिबद्धता क्या और कितनी कम या अधिक है, ये और इन जैसी कतिपय अन्य स्थितियाँ इतिहास रचना प्रक्रिया को निर्धारित एवं नियन्त्रित करती हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण करनेवाले इतिहासकार भी विविध सास्कृतिक परिस्थितियो, विचार सरणियो और राजनीतिक प्रतिबद्धताओ का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि डॉ० हीरालाल गुप्त ने प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन भारत का इतिहास लिखनेवाले जिन आधुनिक इतिहासकारो के व्यक्तित्व एव कृतित्व की विवेचना की है, वे सख्या में सीमित होते हुए भी लगभग सभी ज्ञात प्रमुख विचार-सरणियो एव ऐतिहासिक दृष्टियों का सम्यक रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं। यह एक स्तरीय कृति है जिसकी भाषा स्पष्ट तथा शैली विश्लेषणात्मक है। इस विषय पर हिन्दी में पुस्तक की रचना कर डॉ० गुप्त ने एक बडे अभाव की पूर्ति की है। मुझे विश्वास है कि डा० गुप्त की इस कृति का इतिहास के विद्यार्थियो एव विद्वानो द्वारा समुचित स्वागत किया जायेगा।

२८-१२-१९९०
२३, हीरापुरी,
गो० वि० वि, गोरखपुर

शिवाजी सिंह

प्राक्कथन

इतिहास की आधुनिक अवधारणा मुख्यत योरोपीय है जिसकी जड़ें यूनानी-ईसाई परम्परा में और विकास १८ वी शती के योरोपीय परिवेश में दृष्टिगत होता है। इसके अनुरूप प्राचीन भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन १८ वी शती के अंतिम दशको में योरोपीय विद्वानों द्वारा प्रारम्भ किया गया। १७९४ में सर विलियम जोन्स द्वारा मनुस्मृति का भूमिका सहित किया गया अनुवाद सम्भवत इस प्रकार का प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास था।

स्वतन्त्रता के पूर्व प्राचीन भारतीय इतिहास का यह पुनर्लेखन मुख्यत दो दृष्टिकोणो से प्रभावित रहा। प्रथम, विश्व की—विशेषत योरोप की विभिन्न प्राचीन सस्कृतियो एव सभ्यताओ से प्राचीन भारतीय सस्कृति एव सभ्यता को हीन एव अपेक्षाकृत बाद की घोषित करना जिसमें भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के औचित्य का सिद्ध करना भी सम्मिलित था तथा द्वितीय, इस दृष्टिकोण के प्रतिक्रिया स्वरूप प्राचीन भारतीय सस्कृति और सभ्यता के उदात्त पक्षो का प्रस्तुत कर उसका गौरवगान करना था। इन दृष्टिकोणा को पुष्ट करने के लिए खोजी गयी सामग्री एव लिखे गये ग्रन्थो ने निश्चित रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन एव अनुसधान के लिए प्रचुर मौलिक सामग्री प्रदान की।

स्वतन्त्रता के पश्चात प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन में अनेक दृष्टिकोणों का प्रवेश हुआ। एशिया महाद्वीप के विभिन्न खण्डो—मध्य, पश्चिमी एव दक्षिण-पूर्व या सुदूरपूर्व—को ऐतिहासिक अध्ययन की इकाई मानकर भारतीय इतिहास का अध्ययन दक्षिण पूर्व एशिया के परिप्रेक्ष्य में करना और मार्क्स एव एंजल्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो के आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास का चरित्र प्रस्तुत करना स्वातन्त्र्योत्तर काल के प्रमुख दृष्टिकोण हैं। इन दृष्टिकोणो के अतिरिक्त आधुनिक प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन में समय-समय पर सामाजिक आवश्यकताओं व्यक्तिगत मान्यताओ एव इतिहास दार्शनिको के विभिन्न विचारो से प्रभावित अन्य विभिन्न दृष्टिकोण भी प्रचलित हुए हैं। उदाहरणार्थ, १९वी शती का समाज सुधारवादी दृष्टिकोण, अप्रिय सत्य तक को प्रकाश में लाने का दृष्टिकोण आदि। वस्तुत किसी भी इतिहासकार की मानसिक बनावट उसके समय एव तत्कालीन समाज से प्रभावित होती है।

अतएव किसी भी इतिहास लेखन में विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रचलित होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

प्रस्तुत पुस्तक में पहले से सातवें अध्याय तक प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन सम्बन्धी उपर्युक्त दृष्टिकोणों या प्रवृत्तियों को रेखांकित करनेवाले सात प्रतिनिधि इतिहासकारों के इतिहास लेखन से परिचित कराया गया है। इनमें रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर प्राचीन भारतीय इतिहास की इमारत खड़ी करने वाले वस्तुनिष्ठ समर्थक राष्ट्रीय इतिहासकार हैं, जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम विशेषतः भारत की पुरा सम्पदा को प्रकाशित करनेवाले मार्गदर्शक इतिहासकार हैं, विंसण्ट आर्थर स्मिथ पर साम्राज्यवादी इतिहासकार होने का आरोप लगाया जा सकता है, काशीप्रसाद जायसवाल उग्र राष्ट्रीय इतिहासकारों में अग्रगण्य हैं रमेशचन्द्र मजूमदार कटु सत्य तक को प्रस्तुत करने में न हिचकनेवाले इतिहासकार हैं, आनन्द कुमारस्वामी अपने मौलिक दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित आदर्शवादी, मुख्यतः कला के इतिहासकार हैं और दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी मार्क्सवादी पद्धति पर प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक चरित्र को प्रस्तुत करनेवाले इतिहासकार हैं। इसके आगे दो परिशिष्ट जोड़े गये हैं। प्रथम परिशिष्ट में बारहवीं शताब्दी के इतिहासकार कल्हण पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकारों के साथ प्राचीन भारत के इस प्राचीन इतिहासकार का परिचय यहाँ अनावश्यक नहीं है क्योंकि उसके इतिहास लेखन में इतिहास की आधुनिक अवधारणा के तत्त्व परिलक्षित होते हैं। द्वितीय परिशिष्ट में स्वतन्त्रतापूर्व प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के लेखन पर प्रकाश डाला गया है। एक विशिष्ट राजनीतिक परिवेश में इतिहासकारों में विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास और इनके पोषण के लिए साधनों का प्रयोग कैसे होता है इस परिशिष्ट से अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है। अन्त में प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन से परिचित करानेवाले महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची प्रस्तुत की गयी है।

पुस्तक के प्रणयन में यथाशक्य प्रामाणिक स्रोतों से ही सामग्री संकलित की गयी है। किसी इतिहासकार के इतिहास लेखन का परिचय प्रायः उसके जीवन वृत्त प्रमुख कृतियाँ, इतिहास लेखन पद्धति एवं प्रमुख ऐतिहासिक मान्यताएँ तथा उनके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कराया गया है। विद्यार्थियों के उपयोग हेतु विभिन्न स्थानों पर अंग्रेजी के कोटेशन दिये गये हैं।

इस पुस्तक के प्रणयन की प्रेरणा एम० ए० (उत्तरार्द्ध) कक्षा में अध्ययन

हेतु हिन्दी-भाषा भाषी विद्यार्थियों की कठिनाईयां से मिली। इस दिशा में शिष्य (एम० ए०, १९८५) एवं मित्र श्री खडगबहादुर यादव (अब प्राध्यापक, बाबा गयादास इ० का०, बरहज) का विशेष आग्रह रहा। महाविद्यालय के प्राचार्य श्री राजनारायण पाठक के उत्साहवर्द्धन और गुरुवर डॉक्टर शिवाजी सिंह (प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय) के मार्गदर्शन से यह कार्य सम्पन्न हुआ। प्रो० सिंह ने विभिन्न व्यस्तताओं एवं स्वास्थ्य ठीक न होने के बावजूद इसका आमुख लिखकर इसकी उपयोगिता को निश्चित रूप से बढ़ा दिया है। एतदर्थ इनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन हेतु शब्दों का अभाव-सा प्रतीत होता है। दिवाकरप्रसाद तिवारी (प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, मोहम्मदाबाद गोहना, मऊ) एवं डॉ० विनोदकुमार दीक्षित (प्राध्यापक, संस्कृत विभाग) ने पुस्तक लेखन में विभिन्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर और डॉ० गदाधर मिश्र (प्राध्यापक, संस्कृत विभाग) ने पुस्तक में भाषा सम्बन्धी त्रुटियों को सुधार कर अनुगृहीत किया है। महाविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री प्रसिद्धनाथ दीक्षित और सहायक श्री हरिशंकर पाण्डेय ने इस पुस्तक लेखन में प्रयुक्त ग्रन्थों को उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। विभिन्न शोध संस्थानों, जिनमें भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना उल्लेख्य है से पुस्तक में प्रयुक्त विभिन्न इतिहासकारों के चित्र प्राप्त किये गये हैं। एतदर्थ लेखक इनके प्रति आभार प्रकट करते हुए उन विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता है जिनकी कृतियों के माध्यम से यह पुस्तक लिखी जा सकी। विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी के संचालक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी जी के प्रति आभार प्रकट करते हुए, जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन का कार्य सहर्ष स्वीकार किया, अन्तत किन्तु प्राथमिक रूप से लेखक अनन्त महाप्रभु के चरणों में प्रणति निवेदन करता है जिनकी असीम अनुकम्पा से ही यह कार्य सम्पन्न हुआ।

आशा है इस पुस्तक से प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन की एक सामान्य जानकारी हो सकेगी। इस आशा की पूर्ति से लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा। इसमें किसी सुझाव हेतु वह सदैव प्रस्तुत रहेगा।

१ जनवरी, १९९१
आश्रम बरहज,
देवरिया

–हीरालाल गुप्त

दो शब्द

मानव जीवन की विविधताएँ और चिंतन के विभिन्न आधार इतिहासकारों को भिन्न भिन्न दृष्टियाँ प्रदान करते हैं। इसी कारण प्राचीन भारत का आधुनिक इतिहास लेखन भी विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करता है। इनके अध्ययन के बिना प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन अधूरा है। इसको दृष्टि में रखकर विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन के इतिहास का अध्ययन सम्मिलित किया गया है। किंतु प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली सरल एवं हिन्दी माध्यम की प्रामाणिक पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। इस दृष्टि से डॉ० हीरालाल गुप्त द्वारा प्रणीत प्रस्तुत पुस्तक 'प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकार' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन में प्रचलित विभिन्न दृष्टिकोणों का परिचय विभिन्न प्रतिनिधि इतिहासकारों के इतिहास लेखन के माध्यम से कराती है। प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन पर लिखित यह पुस्तक निश्चित् रूप से एक बड़े अभाव की पूर्ति करती है।

—राजनारायण पाठक

आश्रम बरहज,
देवरिया

अनुक्रम

●

अध्याय एक

रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर (१८३७–१९२५)

रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का जन्म १८३७ ई० में महाराष्ट्र प्रान्त के रत्नागिरि जिले में हुआ था। इनके पिता राजस्व विभाग में लिपिक के पद पर नियुक्त थे। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा एल्फिस्टन कालेज, बम्बई में ग्रहण की। पहले इन्होंने यहीं लिपिक के रूप में और बाद में अध्यापक के रूप में कार्य किया। बम्बई विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर उन्होंने वहीं से बी० ए० (१८६२) एवं एम० ए० (१८६३) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् भण्डारकर राजस्व विभाग में नियुक्ति चाहते थे किन्तु तत्कालीन पब्लिक इन्स्ट्रक्टर हॉवर्ड ने उनकी प्रतिभा को परख कर उन्हें रत्नागिरि हाई स्कूल में हेड मास्टर के रूप में नियुक्त कराया जहाँ वे १८६५ से १८६७ तक कार्यरत रहे। १८६७ से १८७२ तक वे एल्फिस्टन कालेज बम्बई में संस्कृत



के एक्टिंग प्रोफेसर रहे और १८७२ से १८७९ तक वहीं उन्होंने सहायक प्रोफेसर के रूप में काम किया। १८७९ में भण्डारकर डेकेन कालेज, पूना में एक्टिंग प्रोफेसर होकर आ गये और यहीं १८८१ में प्रोफेसर बन गये। यहीं से वे १८९३ में सेवानिवृत्त हुए। इसके पश्चात भण्डारकर बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर बनाये गये। वे अन्य विभिन्न संस्थाओं द्वारा भी सम्मानित किये गये। १९२५ में उनकी यश कीर्ति शेष रह गयी।

भण्डारकर की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

भण्डारकर की समस्त कृतियों—महत्त्वपूर्ण पुस्तकों, लेखों एवं व्याख्यानों—का संग्रह २४८२ पृष्ठों में 'कलेक्टेड वर्क्स ऑफ सर आर० जी० भण्डारकर'

शीर्षक से 'भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना' द्वारा किया गया है जिसका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

१ प्रारम्भ में भण्डारकर ने संस्कृत साहित्य को अपनी सेवायें प्रदान की थी। उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण के मार्टिन हॉग के संस्करण की समालोचना एव अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होने 'मालतीमाधव' के एक महत्त्वपूर्ण संस्करण का सम्पादन भूमिका के साथ किया।

२ इतिहास के ग्रन्थो में 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ डेकन' भण्डारकर का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जो सर्वप्रथम १८८४ में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ में प्रारम्भिक काल से मुस्लिम आक्रमण तक का दकन का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में उस समय तक उपलब्ध प्राय सभी प्रकार के साक्ष्यों का उपयोग किया गया है। मौर्यों के काल से लेकर इसमें सातवाहनों, प्रारम्भिक चालुक्यो, राष्ट्रकूटो, परवर्ती चालुक्यो, कलचुरियो, प्रारम्भिक एव परवर्ती यादवो और शिलाहारो के इतिहास का महत्त्वपूर्ण ढग से विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें न केवल राजनीतिक इतिहास को सम्मिलित किया गया है बरन विभिन्न कालो पर उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सांस्कृतिक इतिहास को भी प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में परिशिष्ट के रूप में 'ए नोट आन द गुप्त एरा', 'ए नोट ऑन द शक डेटस' और 'इन्ट्रोडक्शन टू हेमाद्रिज व्रतकाण्ड' जैसे शीर्षको का विवेचन भी सम्मिलित किया गया है। बाद में इस ग्रन्थ को भण्डारकर के सुपुत्र देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने संशोधित कर भी प्रकाशित कराया।

इतिहास सम्बन्धी भण्डारकर की दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति 'ए पीप इन टू द अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया' है जो १८९० में प्रकाशित हुआ था। यह ग्रन्थ उत्तर भारत के इतिहास का संक्षिप्त विवेचन उपस्थित करता है। इसमें मौर्यों, शुगो कण्वों, इण्डो बैक्ट्रियन यूनानियो, शको, क्षत्रपो तथा गुप्तो के इतिहास का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में गुप्तो के इतिहास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

भण्डारकर की इतिहास सम्बन्धी तीसरी महत्त्वपूर्ण कृति 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम्स' है। इसका प्रकाशन १९१३ में हुआ था। इस ग्रन्थ में भण्डारकर ने वैष्णव, शैव और कतिपय अन्य लघु धर्मों का क्रमबद्ध इतिहास सर्वप्रथम उपलब्ध कराया था। इसकी रचना में उन्होंने साहित्य, अभिलेख, मुद्रा तथा शिल्प आदि सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग

किया है। वस्तुत मण्डारकर की यह कृति भारती विद्या (Indology) के क्षेत्र में अप्रतिम महत्त्व रखती है।

३ भण्डारकर ने प्राचीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित विभिन्न लेख लिखे जो तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं–यथा, 'जनल ऑफ द बाम्बे ब्रान्च आफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी', 'इण्डियन एण्टीक्वेरी', 'एपिग्रफिया इण्डिका' और 'प्रोसिडिंग्स् ऑफ द इण्टरनेशनल कांग्रेस आफ ओरियन्टलिस्टस' आदि में प्रकाशित हुए। उनके ऐसे लेखो में विभिन्न प्राचीन अभिलेखो का सम्पादन और पतञ्जलि की तिथि पर प्रकाश आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अन्य शैक्षिक उपलब्धियाँ

१ १८७६ में भण्डारकर लन्दन के 'इण्टरनेशनल काग्रेस आफ ओरियन्ट-लिस्टस' द्वारा आमन्त्रित किये गये। किन्तु कतिपय कारणो से वे इसमें सम्मिलित न हो सके तथापि उन्होने इसमें 'नासिक केव इन्सक्रिप्सन' शीर्षक से लेख प्रेषित किया। १८८६ में इस सस्था द्वारा भण्डारकर को पुन आमन्त्रित किये जाने पर उन्होने 'रामानुज एण्ड द भागवत ऑर पाचरात्र सिस्टम' लेख प्रस्तुत किया।

२ अपनी योग्यता के कारण भण्डारकर देश विदेश की विभिन्न शैक्षिक सस्थाओ द्वारा सम्मानित किये गये। १८८५ में वे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, १८८७ में जर्मन ओरियन्टल सोसाइटी, १८८७ में ही अमेरिकन ओरि-यन्टल सोसाइटी और १८९० में फ्रेंच इन्स्टीट्यूट की मानद सदस्यता हेतु निर्वाचित किये गये। वे गाटिंगन (Gottingn) (१८८५) और कलकत्ता (१९०९) विश्वविद्यालयों द्वारा पी एच० डी० और बम्बई (१९०४) विश्वविद्यालय द्वारा एल एल० डी० की मानद उपाधियों से भी सम्मानित किये गये।

३ अपने जीवन के ८० वर्ष पूर्ण किये जाने पर १९१७ में 'भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की गयी जिसे बम्बई के तत्कालीन गवनर लार्ड विलिगटन ने सम्बोधित किया। इस अवसर पर उनके सम्मान में एक स्मारिका का भी प्रकाशन हुआ जिसमें एस० के० आयगर, जी० ए० ग्रियर्सन, गगानाथ झा, एस० लेवी, ए० ए० मैकडॉनेल, ई० एफ० पार्जिटर, टी० डब्ल्यू और श्रीमती रीज डेविड्स, एच० पी० शास्त्री, वी० ए० स्मिथ आदि उनके मित्रों एव शिष्यों जैसे प्रसिद्ध विद्वानों के लेख थे। भण्डारकर ने इस सस्था को अपनी दुर्लभ पुस्तको तथा लेखो आदि का दान कर दिया।

४ एक शिक्षक, अनुसंधानकर्ता और लेखक होने के साथ साथ भण्डारकर तत्कालीन समाज सुधार आन्दोलनो में भी सक्रिय रूप से जुडे थे। वे महाराष्ट्र के 'प्रार्थना समाज' के सक्रिय सदस्यो में से एक थे।

ऐतिहासिक पद्धति एव विचार

रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर की ऐतिहासिक कृतियो की मीमासा कर उनकी ऐतिहासिक पद्धति एव विचारो पर प्रकाश डाला जा सकता है। उनकी ऐतिहासिक कृतियो की मीमासा करने से विदित होता है कि वे वास्तविक इतिहास प्रस्तुत करने के पक्षधर थे। भण्डारकर ने अपने इस दृष्टिकोण का स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर स्वय कहा है कि, "इतिहासकार को सर्वप्रथम निष्पक्ष होना चाहिए। उसका लक्ष्य शुष्क सत्य के अतिरिक्त कुछ नही होना चाहिए। उसे हर मामले में प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता जाँचनी चाहिए एव देखना चाहिए कि वह जो कुछ कह रहा है वह सम्भवत है या नही।" भण्डारकर इतिहास-दार्शनिक रांके के इस मत-य से सहमत थे कि इतिहासकार का कार्य भूतकाल का उस रूप में वर्णन करना है जैसा कि वह था। उनके विचार से प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्येता के सम्मुख यह मुख्य प्रश्न होना चाहिए कि 'क्या और कब हुआ।' इतिहास लेखन सम्बन्धी भण्डारकर की इस दृष्टि की झलक उनके द्वारा 'भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट' में १९१९ में आयोजित 'ओरियन्टल कान्फरेन्स' में दिये गये भाषण के इस अंश में भी मिलती है— 'मैं अपने जीवन के सक्रिय वर्षों को इस निश्चित विश्वास के साथ विराम देता हूँ कि हमारे बीच विकसित तर्कसगत समालोचनात्मक पाण्डित्य लाछनो और प्रहारों के विरुद्ध सम्भाले रखा जायेगा।"

इतिहास सम्बन्धी अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण भण्डारकर किसी भी विषय पर लिखने से पूर्व उस विषय पर उपलब्ध समस्त साक्ष्यो की परीक्षा तो करते ही है, विभिन्न साक्ष्यो के तुलनात्मक महत्त्व पर भी ध्यान देते है। इसी कारण अपने ऐतिहासिक लेखनों में भण्डारकर एक अधिवक्ता की भाँति व्यवहार करते हुए न दिखाई देकर एक न्यायाधीश के रूप में व्यवहार करते हुए दृष्टिगत होते है। इसके बाद वे अपने लेखन को पाश्चात्य दार्शनिक एव ऐतिहासिक विधि में ढालने का प्रयास करते है। इस सम्बन्ध में ए० डी० पुसलकर लिखते है कि 'वे महत्त्वपूर्ण और भारतीय प्राचीन कालीन अवशेषों के अध्ययन में पश्चिमी पद्धतियों को प्रयुक्त करने में अग्रणी थे और उनका कार्य पूर्व और पश्चिम के दोनों के कार्यों के साथ बहुत अच्छा मेल प्रस्तुत करता है।" भण्डारकर की

ऐतिहासिक पद्धति एवं विचार उनके 'क्रिटिकल एण्ड कम्परेटिव मेथड्स' विषयक लेखों से भी स्पष्ट होता है।

भण्डारकर का यह मानना था कि इतिहास का अर्थ केवल राजनीतिक इतिहास नहीं है वरन् आधुनिक अर्थों में मानव की समस्त गतिविधियाँ इसमें समाहित होती हैं। अपनी इस मान्यता के कारण ही भण्डारकर ने जिस काल के इतिहास पर लिखा है उस काल के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि दशाओं पर भी प्रकाश डाला है।

भण्डारकर केवल ऐतिहासिक घटनाओं को ही प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं समझते थे अपितु उनके कारण और प्रभाव को भी प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण समझते थे। किन्तु वे घटनाओं के दैवी विधान में विश्वास नहीं रखते थे। इसीलिए ए० एल० बैशम ने लिखा है कि, "उन्होंने (भण्डारकर ने) ऐतिहासिक घटनाओं के कारण में दैवी विधान को स्वीकार नहीं किया है। और यही कारण है कि उनकी ऐतिहासिक पद्धति सदैव निरपेक्ष बनी रही।" ए० डी० पुसलकर का भी कथन है कि "भण्डारकर भारतीय इतिहास के प्राचीन काल वैज्ञानिक ऐतिहासिक पाण्डित्य के पिता थे जिस प्रकार सर यदुनाथ सरकार मध्यकालीन और प्रारम्भिक ब्रिटिश काल में थे ।"

(Bhandarkar was the father of scientific historical scholarship in the ancient period of Indian history as Sir Jadunath Sarkar was in medieval and early British period) इसके आगे पुसलकर भण्डारकर के सम्बन्ध में लिखते हैं कि—

"Bhandarkar is rigidly objective, matter of fact, in his historical writings There are no observations he does not look sideways He has studiedly excluded his personality from his writings Though it is said that historical writing reflects as much of the period of the writer as of the period on which he writes one would vainly search for any glimpses of Bhandarkar in his writings He would easily have passed muster as a historian in the view of Ranke who condemned the approach to the study of history from any standpoint of subjective bias, and who, according to Acton, taught us to be critical and colourless "

भण्डारकर की उक्त ऐतिहासिक पद्धति एवं विचारों ने उनके समकालीन और बाद के इतिहासकारों को बहुत प्रभावित किया। उनके समकालीन राजा राजेन्द्रलाल मित्र ने उनके जैसी ही ऐतिहासिक लेखन पद्धति ग्रहण की थी। बाद के इतिहासकारों में सर्वप्रथम उनके सुपुत्र देवदत्त रामकृष्ण (डी० आर०) भण्डारकर पर उनका प्रत्यक्ष प्रभाव रहा। यहाँ यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि अपनी पद्धति एवं विचारों से बाद के इतिहासकारों को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले इतिहासकारों में भण्डारकर अग्रगण्य हैं। उनके बाद किन महत्त्वपूर्ण इतिहासकारों पर उनका प्रभाव रहा, पुसल्कर ए० एल० बैशम के इस मत को उद्धृत करते हैं कि—

'Raichaudhari is a historian of the school of Bhandarkar attempting to discover the dry truth "

और वे आगे इस पंक्ति में के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री, पी० वी० काणे, आर० सी० मजूमदार, वी० वी० मिराशी और ए० एस० अल्टेकर आदि इतिहासकारों को सम्मिलित करते हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के इतिहास में रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का अप्रतिम महत्त्व है। उनकी वैज्ञानिक ऐतिहासिक पद्धति एवं विचारों ने बाद के इतिहासकारों को बहुत अधिक प्रभावित किया। ●

अध्याय दो

जनरल अलॅक्जेण्डर कनिंघम (१८१४–१८९३)

जनरल अलॅक्जेण्डर कनिंघम स्कॉटलैण्ड के कवि एलन कनिंघम के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म २३ जनवरी, १८१४ को हुआ था। लन्दन के विभिन्न स्कूलों में इन्होने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। १८३१ में बंगाल इन्जीनियर्स में सेकेण्ड लेफ्टीनेन्ट बनने पर १८३३ में कनिंघम का भारत आगमन हुआ। इसके बाद वे रॉयल इन्जीनियर्स के कर्नल बने और १८३६ से १८४० तक भारत के गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्ड के उच्च सेनानायक (एडज्यूटेन्ट जनरल) रहे। मार्च १८४० में ही उनका विवाह एलिसिया मोरिया के साथ हुआ।

१८४५-४६ में कनिंघम सतलज सेना के साथ थे। १८४७ में डा० थामसन और कैप्टन स्ट्रैची के साथ वे लद्दाख तिब्बत कमीशन के अध्यक्ष थे। इस दौरान उन्होंने कश्मीर के मन्दिरों का परिभ्रमण किया तथा कश्मीर के मन्दिरों एवं लद्दाख पर ही अपनी प्रथम दो पुस्तकों का प्रणयन किया। इसके बाद कनिंघम १८६१ तक पी० डब्ल्यू० डी० में अनेक पदों पर कार्यरत रहे।

१८६१ से १८६५ तक कनिंघम ने भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के सर्वेक्षक (सर्वेयर) के रूप में कार्य किया। १८६६ में वे इंग्लैण्ड वापस लौट गये। यहाँ उन्होंने १८७० तक लन्दन में एक बैंक के डायरेक्टर के रूप में कार्य किया। १८७१ में वे पुनः भारत लौटे और यहाँ पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल बनाये गये। भारत में प्रायः ५० वर्षों तक सेवा करने के पश्चात १८८५ में कनिंघम सेवानिवृत्त हुए। इसके पश्चात् अपनी मृत्यु १८९३ तक उन्होंने लन्दन में रहते हुए अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया।

अपनी उपलब्धियों के कारण कनिंघम विभिन्न उपाधियों से सम्मानित किये गये। १८७१ में उन्हें 'चार्टर्ड सर्वेयस इन्स्टीटयूशन' (सी० एस० आई०) तथा १८८७ में नाइट कमाण्डर ऑफ द इण्डियन इम्पायर' (के० सी० आई० ई०) जैसी उपाधियाँ प्रदान की गयी।

भारतीय इतिहास में कनिंघम का योगदान

भारत में अंग्रेजों के आगमन से भारतीय इतिहास लेखन को एक नवीन दिशा प्राप्त हुई थी। इस दृष्टि से कलकत्ते में १५ जनवरी, १८८४ को

एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना एक महत्वपूर्ण चरण था। १८३३ में जेम्स प्रिंसेप ने इस सोसाइटी के सचिव के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया था। सेना में नियुक्त होकर आये जनरल अलेक्जेण्डर कनिंघम ने इन्हीं के सहयोगी के रूप में अपने ऐतिहासिक क्रियाकलापों को प्रारम्भ किया था और इस क्षेत्र में कार्य करते हुए विशेषतः भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। अपने इस योगदान के कारण ही कनिंघम भारतीय पुरातत्व के जनक के रूप में जाने जाते हैं।

अपने पुरातात्विक खोजों के माध्यम से जनरल कनिंघम ने भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व सेवा की। उन्होंने न केवल पुरातात्विक उत्खनन ही कराये अपितु अपने पुरातात्विक सर्वेक्षणों की टिप्पणियों और व्याख्याओं सहित आख्यायें (रिपोर्ट्स) भी प्रस्तुत की जिससे असंख्य प्राचीन ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आये। इसके अतिरिक्त कनिंघम ने अपनी अन्य विभिन्न ऐतिहासिक कृतियों के माध्यम से भी भारतीय इतिहास की श्रीवृद्धि की। उनके कार्यों की संक्षिप्त रूपरेखा निम्नलिखित है—

पुरातात्विक कार्य

क–पुरातात्विक सर्वेक्षक के रूप में (१८६१–१८६५)

१८४० में रायल एशियाटिक सोसाइटी के सचिव जेम्स प्रिंसेप के देहावसान के पश्चात जनरल कनिंघम ने १८६१ तक भारत के पुरातात्विक वैभव का मंथन व्यक्तिगत रूप से किया। १८६१ में उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड कैनिंग के समक्ष भारत की विपुल पुरातात्विक धरोहर के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए एक स्मरण पत्र (Memorandum) दिया। उनके इस स्मरण पत्र को वायसराय ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। कनिंघम को ही इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व भी सौंपा गया और उन्हें पुरातात्विक सर्वेक्षक नियुक्त किया गया। उनके इस कार्य को व्याख्यायित करते हुए कहा गया था कि, "महत्वपूर्ण स्मारकों की रूप रेखा, नाप जोख, रेखाचित्रों, छाया चित्रों एवं अभिलेखों के माध्यम से यथासम्भव तथ्यपरक वर्णन तैयार करना एवं उनके इतिहास तथा परम्पराओं का निरूपण एवं संकलन करना।"

कनिंघम ने पुरातात्विक सर्वेक्षक के रूप में १८६१ से लेकर १८६५ के मध्य तक पूर्व में गया जिले से लेकर पश्चिम में सिन्धु नदी तक तथा उत्तर में कालसी (देहरादून) से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्रों के प्राचीन स्थलों की यात्रा एवं स्मारकों का सर्वेक्षण किया और ऐतिहासिक महत्व के स्थलों की विस्तृत आख्यायें (Reports) भी तैयार किया। उन्होंने अपने

इस सर्वेक्षण के लिए चीनी यात्री ह्वेनसाग (Hiuen Tsang) के यात्रा विवरण को अपने पथप्रदर्शक के रूप में प्रयोग किया। कनिंघम का यह मानना था कि, "जिस प्रकार प्लिनी ने सिकदर महान के पद चिह्नो का अनुसरण करते हुए अपनी रचना की उसी प्रकार मैं चीनी यात्री ह्वेनसाग के पद चिह्नों का अनुगमन करते हुए काय करूंगा।"

किन्तु कनिंघम को अपने पुरातात्त्विक सर्वेक्षण सम्बन्धी इस महत्त्वपूर्ण कार्य को १८६६ में अचानक बन्द कर देना पडा क्योंकि इसी वर्ष पुरातत्त्व विभाग को बन्द कर दिया गया था।

(ख) आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के डाइरेक्टर जनरल के रूप में (१८७०-१८८१)

१८७० में एक बार पुन ई० सी० बेली नामक गृह सचिव ने तत्कालीन भारत सरकार से पुरानिधियो और पुराक्षेत्रो की ओर ध्यान देने का आग्रह किया। उनके इस अनुरोध का अनुकूल प्रभाव पडा और जनरल कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण (Archaeological Survey of India) नाम से गठित एक स्वतन्त्र विभाग का महानिदेशक (Director General) नियुक्त किया गया। उनकी यह नियुक्ति दो हजार मासिक पर की गयी थी। साथ ही ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एव अन्य स्मारकों की देश व्यापी खोज एव लेखा जोखा (Record) तैयार करने की महत्त्वाकाक्षी योजना भी तैयार की गयी।

१८७१ में जनरल कनिंघम ने अपना कार्यभार सम्भाला। इसके बाद सर्वप्रथम उन्होने मुगल साम्राज्य की दो महत्त्वपूर्ण राजधानियों—दिल्ली एव आगरा—का सर्वेक्षण किया। १८७२ का अगला वर्ष राजपूताना, बुन्देलखण्ड, मथुरा, बोधगया एवं गौड अर्थात् बगाल के दौरे में व्यतीत किया। १८७३ में पजाब के कतिपय चुने हुए क्षेत्रो का दौरा किया तथा पश्चिम भारत के विभिन्न क्षेत्रो से बहुसख्यक हिन्द यवन (Indo-Greek) प्रतिमाएँ एकत्र की गयीं। १८७३ से १८७७ के मध्य का अपना समय कनिंघम ने सयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर-प्रदेश), बुन्देलखण्ड और मालवा आदि क्षेत्रो के सर्वेक्षण में व्यतीत किया। इसी दौरान उन्होने भरहुत के प्रसिद्ध स्तूप की खोज की।

१८७८-७९ का वर्ष कनिंघम ने पुन पजाब क्षेत्र के दौरे में व्यतीत किया। उनके इसी दौरे में तक्षशिला के टीले से प्राक् सिकन्दर काल के भारतीय सिक्को का एक भाण्ड (Hoard) प्राप्त हुआ था। इसके बाद अगला वर्ष कनिंघम ने बगाल एव बिहार के क्षेत्रों में खोज कार्य में व्यतीत किया। १८८०-८१ का

उनका वय बोध गया के बौद्ध मन्दिर की सफाई कराने तथा ह्वेन साग द्वारा वर्णित सीमावर्ती स्थलो की खोज म बीता। १८८२–८५ के मध्य राजपूताना, बुन्देलखण्ड एव रीवा के क्षेत्रो मे अनेक ऐतिहासिक स्थलो की जाँच पडताल एव विस्तत आख्यायें तयार करन का काय सम्पन्न किया गया।

सक्रिय एव अविराम सेवा के पश्चात जनरल कनिघम ने अवकाश ग्रहण करने का निश्चय किया और १८८५ में सेवानिवृत्त हो गये।

पुरालिपि (PALAEOGRAPHY) सम्बन्धी काय

खोज एव सर्वेक्षण के अतिरिक्त जनरल कनिघम ने पुरालिपि के महत्त्व को भी समझा था। १८७२ में जेम्स बर्जेस ने 'इण्डियन एण्टीक्वेरी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। इस पत्रिका में प्राचीन अभिलेखो के मूलपाठ, अनुवाद और कभी कभी अभिलेखो की छाया का भी प्रकाशन किया जाता था। किन्तु वस्तुत इस प्रकार की पत्रिका प्रकाशित करन की यह योजना जनरल कनिघम के मस्तिष्क की ही उपज थी। उनके समय के प्रसिद्ध पुरालिपि शास्त्रियों में ब्यूहलर फ्लीट, एग्गलिंग, राइस, डी० आर० भण्डारकर, भगवान लाल इन्द्रजी और हुल्श आदि के नाम उल्लेखनीय है। १८७७ में कनिघम की योजना के अनुरूप 'कापस इन्सक्रिप्सनम इण्डिकेरम' की पहली जिल्द का प्रकाशन हुआ जिसमें अशोक एव उसके पौत्र दशरथ के उस समय तक के उपलब्ध सभी अभिलेखो का मूलपाठ, अनुवाद एव प्रतिकृतियो का अत्यन्त सुचारु ढग से प्रकाशन किया गया। जनरल कनिघम की ही अनुशसा पर फ्लीट को १८८३ में राजकीय पुरालिपिवेत्ता के रूप में १० वर्षों के लिए नियुक्त किया गया। फ्लीट को गुप्त राजाओ के अभिलेखों का एक कापस (अभिलेख सग्रह) प्रकाशित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। १८८८ में फ्लीट ने कापस इन्सक्रिप्सनम इण्डिकेरम के तृतीय जिल्द का प्रकाशन कराया।

कनिघम की ऐतिहासिक कृतियाँ

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की २३ जिल्दों वाली विशाल रिपोर्टों के अतिरिक्त कनिघम ने अपनी अन्य अनेक कृतियाँ भी प्राचीन भारतीय इतिहास को प्रदान की। उनकी इन ऐतिहासिक कृतियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

१ *ऐंशियेंट ज्यॉग्रफी ऑफ इण्डिया*
२ द स्तूप आफ भरहुत
३ द बुक ऑफ इण्डियन एराज
४ क्वायन्स आफ ऐंशियेंट इण्डिया

कनिंघम की पुरातात्त्विक दृष्टि एवं देन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनरल कनिंघम का कार्य क्षेत्र मुख्यत पुरातत्त्व था। उनका पुरातत्त्व सम्बन्धी दृष्टिकोण भी अत्यन्त व्यापक था। एक बार सर्वेक्षण कार्य के सम्बन्ध में अपने सहयोगियो को निर्देश देते हुए उन्होने कहा था कि, "पुरातत्त्व मात्र टूटी हुई मूर्तियां, पुराने भवनो तथा टीलो के ध्वसावशेषो तक ही सीमित नही है बल्कि विश्व इतिहास से सम्बद्ध वह सभी वस्तुओ को समेटता है। हमारे शोध का उद्देश्य अतीत के व्यवहारो, प्रथाओ आदि को उदघाटित करने से सम्बद्ध होना चाहिए।" पुरातत्त्व के सम्बन्ध में कनिंघम का यह दृष्टिकोण केवल सैद्धान्तिक ही नही था वरन् इसको पूर्ण करने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील भी रहे। यह तथ्य इसी बात से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्य जिन परिस्थितियो में सम्पादित किये उनमें अन्य किसी व्यक्ति के लिए असम्भव तो नही, अत्यन्त कठिन अवश्य था। उस समय देश में परिवहन और सचार के माध्यम अत्यन्त अविकसित अवस्था में थे। कनिंघम को अपने सर्वेक्षण के लिए अधिकाश यात्रायें घोडे पर सवार होकर करनी पडी थी। कुछ स्थानो पर बैलगाडी से और कही कही पर तो उन्हें पैदल भी यात्रा करनी पडी थी।

जनरल कनिंघम के पुरातत्त्व सम्बन्धी सर्वेक्षणो एव उनकी विस्तृत रिपोर्टों सहित अन्य ऐतिहासिक कृतियो से प्राचीन भारतीय इतिहास पर श्लाघनीय प्रकाश पडा। प्राचीन भारतीय अभिलेखो के प्रकाशन में उनकी रुचि के परिणाम स्वरूप फ्लीट ने जो उच्च प्रतिमान स्थापित किये उसका अनुकरण भारतीय पुरालिपिवेत्ता आज भी करते है।

आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के डाइरेक्टर जनरल के पद से अवकाश ग्रहण करने पर जनरल कनिंघम ने इस पद को समाप्त करने की सस्तुति की और सम्पूर्ण उत्तर भारत को तीन सर्किलों—पजाब, उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) तथा मध्य प्रान्त में विभाजित करने की सलाह दी। इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक सर्किल के पुरातात्त्विक कार्यों की व्यवस्था के लिए एक सर्वेक्षक (सर्वेयर), उसके दो सहायको तथा दो ड्राफ्टमैनों की व्यवस्था हुई। इस प्रकार भारतीय पुरातत्त्व विभाग के पुनर्गठन में भी कनिंघम ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्पष्ट है भारतीय पुरातत्त्व के क्षेत्र में जनरल कनिंघम ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इस कारण कतिपय विद्वानों ने विशेषत भारतीय पुरातत्त्व के

विकास में कनिंघम के योगदान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इन विद्वानों के अनुसार भारतीय पुरातत्त्व को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के कारण कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व का जनक (Father of Indian Archaeology) कहा जा सकता है। प्रसिद्ध भारतीय पुरातात्त्विक एच० डी० साकलिया ने भारतीय पुरातत्त्व के विकास के इतिहास का जो काल विभाजन किया है उसके प्रथम युग (१८६१–१९०२) में जनरल कनिंघम का विशेष योगदान होने के कारण इस युग को 'कनिंघम युग' नाम से सम्बोधित किया है।

किन्तु कतिपय विद्वान जनरल कनिंघम के पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्यों की आलोचना भी करते हैं। इनके अनुसार कनिंघम ने भौतिक अवशेषों के आधार पर मानव के समग्र इतिहास रचना की घोर उपेक्षा की थी। उन्होंने सुव्यवस्थित एवं विस्तृत उत्खनन (Deep excavation) की विधियों का भी सहारा नहीं लिया। यह भी विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि कनिंघम ने पाषाणयुगीन शोध की पूर्ण उपेक्षा की। १८७३ में हड़प्पा के प्रसिद्ध टीले से उन्हें चित्राक्षर लिपि से अंकित एक मुहर प्राप्त हुई थी। लेकिन वे यह समझने में पूर्णतया असमर्थ रहे कि उस मुहर का सम्बन्ध एक महान परन्तु अज्ञात सभ्यता से था। किन्तु कनिंघम की इन असफलताओं के सम्बन्ध में ये आक्षेप सत्य से परे और निराधार हैं। वस्तुतः भारतीय पुरानिधियों एवं पुरावशेषों के महत्त्व के विषय में विद्वानों का ध्यान कनिंघम के खोजों एवं सर्वेक्षणों के फलस्वरूप ही आकर्षित हो सका था। उनके समय तक उत्खनन की विधियों का समुचित विकास न हो पाने के कारण ही इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हो सकी थी। समग्र रूप से भारतीय पुरातत्त्व एवं इतिहास को जनरल कनिंघम की देन अप्रत्याख्येय है। उनके बाद के पुरातत्त्वविदों ने उनके कार्यों को एक आदर्श के रूप में समझा और ग्रहण किया। 

अध्याय तीन

विंसेण्ट आर्थर स्मिथ (१८४३–१९२०)

उन्नीसवीं शताब्दी में सर विलियम जोन्स, एच० टी० कोलब्रुक, चार्ल्स विल्किंस, एच० एच० विल्सन, जेम्स प्रिंसेप, एफ० मैक्समूलर और जनरल कनिंघम आदि योरोपीय विद्वानों द्वारा भारतीय इतिहास के लेखन का काम प्रारम्भ किया गया। इसके पश्चात् कर्नल टाड, जो० डफ, एल्फिस्टन और वी० ए० स्मिथ आदि ने इसमें अभिवृद्धि की। स्मिथ ने १९०४ में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' को प्रकाशित कराया। इसमें ६०० ई० पू० से लेकर मुस्लिम आक्रमण तक का राजनीतिक इतिहास प्रस्तुत किया गया था। इतने लम्बे कालखण्ड का राजनीतिक इतिहास प्रस्तुत करने वाली यह प्रथम रचना थी। इसमें स्मिथ ने उस समय तक के उपलब्ध सभी पुरातात्विक, मौद्रिक, आभिलेखिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों का विद्वत्तापूर्ण उपयोग किया था। इसके अतिरिक्त स्मिथ ने भारतीय इतिहास की जो सेवा की उसके कारण वे प्राचीन भारत के एकप्रतिष्ठ आधुनिक इतिहासकार के रूप में जाने जाते हैं।

विंसेण्ट आर्थर स्मिथ का जन्म १८४३ ई० में डबलिन में हुआ था। प्राचीन वस्तुओं के खोजी आयरिश पिता के तेरह बच्चों में से ये पाँचवें थे। उन्होंने डबलिन और आक्सफोर्ड से अत्यन्त योग्यतापूर्ण मास्टर डिग्री लेने के पश्चात् डबलिन विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि ली। इसके पश्चात् १८७१ में वे इण्डियन सिविल सर्विस (आई० सी० एस०) की सेवा में आ गये। अपने उत्तरदायित्वों का सफल निर्वाह करते हुए स्मिथ ने भारतीय इतिहास के अध्ययन एवं अनुसंधान में भी संलग्न रहकर अपने को एक भारतीय इतिहासकार के रूप में भी प्रतिष्ठित किया। वे लन्दन में रायल एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के फेलो और आक्सफोर्ड में इण्डियन इन्स्टीट्यूट से भी सम्बद्ध रहे।

स्मिथ की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

स्मिथ ने लगभग ५० वर्षों तक भारतीय विद्या (इण्डोलॉजी) की महत्त्वपूर्ण सेवा की। परिणामस्वरूप उनके अनेक ग्रन्थ एवं लेख प्रकाशित हुए जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

१ अशोक, द बुद्धिस्ट इम्परर ऑफ इण्डिया (१९०१)—स्मिथ का यह प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ था। १९०९ और १९२० में यह ग्रन्थ पुनप्रकाशित भी हुआ। किसी भारतीय शासक की उपलब्धियो से सम्बन्धित यह प्रथम ग्रन्थ था। अशोक के अभिलेखों के अग्रेजी अनुवाद, अशोक और ग्रीक राजाओ के बीच पारस्परिक सम्बन्धो का विवचन तथा अशोक के धम्म की प्रकृति का विवेचन इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषतायें थी। स्मिथ के पश्चात अशोक के इतिहास पर डी० आर० भण्डारकर, आर० के० मुकर्जी और रोमिला थापर आदि विद्वानो ने ग्रन्थ लिखे और सभी ने स्मिथ के इस ग्रन्थ का उपयोग किया।

२ दि अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (१९०४)—इस ग्रन्थ में स्मिथ ने ६०० ई० पू० से मुस्लिम आक्रमण तक का इतिहास प्रस्तुत किया। यह भारतीय इतिहास से सम्बन्धित प्रथम ग्रन्थ था जिसमें अट्ठारह शताब्दियो का इतिहास एक साथ प्रस्तुत किया गया था। स्वय स्मिथ ने इस ग्रन्थ में लिखा है कि—
' The first attempt to present a narrative of the leading events in Indian political history for eighteen centuries "

इस ग्रन्थ में स्मिथ ने एलफिंस्टन द्वारा १८३९ में कही गयी बात को दुहराया ह, कि "भारतीय इतिहास में सिकन्दर के आक्रमण के पूव किसी सावजनिक घटना की तिथि निश्चित नही की जा सकती और न तो मुस्लिम विजय के पूव राष्ट्रीय कायवाहियो के क्रमबद्ध सम्ब घ ढूढने का प्रयास ही किया जा सकता है।" इस ग्रन्थ में स्मिथ ने सिक दर की विजय को अत्यन्त महत्वपूण स्थान प्रदान किया है और ५०० पष्ठों के इस ग्रन्थ में ७२ पष्ठ उसके भारत पर आक्रमण के वणन को ही प्रदान किया ह। किन्तु स्मिथ ने इस ग्रन्थ में भारतवष की आधारभूत एकता में पूण विश्वास व्यक्त किया है।

३ द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया (१९१८)—इस ग्रन्थ में प्रारम्भ से १९११ तक का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन, मध्यकालीन एव आधुनिक इतिहास को एक साथ प्रस्तुत करने वाला यह प्रथम ग्रन्थ था। इसमें 'द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' की सामग्री को सशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

४ अन्य ग्रन्थ

(क) कैटेलाग ऑफ द क्वायन्स इन इण्डियन म्यूजियम (१९०६)

(ख) ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन (१९११)

(ग) अकबर द ग्रेट मुगल १५४२–१६०५ (१९१७)

५ महत्वपूर्ण लेख

(क) ग्रीको-रोमन इन्फ्लूएन्स आन द सिविलिजेशन ऑफ ऐंशियेण्ट इण्डिया

(ख) क्वायनेज ऑफ द अर्लीआर इम्पीरियल गुप्ताज

(ग) समुद्रगुप्त

(घ) जैन स्टिप्स एण्ड अदर एण्टीक्वीटीज फ्राम मथुरा

(ङ) आन्ध्रा हिस्ट्री एण्ड क्वायनेज

(च) द कुषाण ऑर इण्डो सिथियन पीरिएड ऑफ इण्डियन हिस्ट्री

(छ) द इण्डो-पार्थियन डायनेस्टीज

(ज) द हिस्ट्री ऑफ द सिटी ऑफ कन्नौज एण्ड ऑफ किंग यशोवर्मा

(झ) ए नोट आन पिपरहवा स्तूप

(ञ) स्कल्पचर ऑफ सिलोन

(ट) द मोनोलिथिक पिलर्स ऑर कॉलम्स (Columns) ऑफ अशोक आदि ।

ऐतिहासिक पद्धति एवं मान्यतायें

स्मिथ के इतिहास सम्बन्धी विचार समकालीन इतिहास दार्शनिकों रॉके (१७९५–१८८६), मामसेन (१८१७–१९०३), ग्रोटे (१७९४–१८७१) और बरी (१८६१–१९२७) की धारणाओं से सम्बद्ध थे । इस प्रकार उनकी ऐतिहासिक पद्धति निश्चित रूप से आधुनिक थी । यद्यपि इतिहास लेखन का उनका क्षेत्र विस्तृत था तथापि उन्होंने कथाओं, परम्पराओं, मिथकों आदि से हटकर मुख्यतः प्राचीन भारत के यथार्थ इतिहास के निर्माण का प्रयास किया । घटनाओं को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में मान्यता प्रदान करने के पूर्व उन्होंने उनका परीक्षण किया है । इतिहास संरचना में इतिहासकार की भूमिका के सम्बन्ध में वे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में कालिंगवुड की इस मान्यता को स्वीकृति प्रदान करते हैं कि, 'इतिहासकार का कार्य न तो अतीत से प्रेम करना होता है और न ही अतीत को अपने से मुक्त करना ही होता है अपितु उसे वर्तमान को समझने के लिए अतीत को उसकी कुंजी बनाना होता है ।''

स्मिथ ने न केवल ऐतिहासिक तथ्यों का संग्रह किया अपितु उनका विश्लेषण भी प्रस्तुत किया । उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन कर यह मान्यता व्यक्त की कि—

(क) भारतीयों ने कोई राजनीतिक क्रान्ति नहीं की ।

(ख) प्राचीन भारतीय गणतन्त्र महत्त्वहीन थे। वास्तव में भारत में समूह द्वारा राजनीतिक गतिविधियों का सचालन कभी भी नहीं हुआ।

(ग) भारतवासी सदव आपस में झगड़ने वाले निरकुश शासन के अभ्यासी है।

प्राचीन भारतीय इतिहास सम्बन्धी स्मिथ की उक्त मान्यतायें उनके साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं।

डा० बी० के० मजूमदार ने स्मिथ की ऐतिहासिक पद्धति और मान्यताओं पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि—

"As a historian he was a scientist and an artist rolled into one He was a true investigator and his chief merit is sobriety —qualities which are absolutely necessary for the historian who has to dig laboriously into the obscure past" इस सम्बन्ध में ए० एल० बैशम ने भी लिखा है कि— 'That Smith's attempt at objectively was such a lamentable failure and that he himself was apparently unaware of the fact, throw much light on the character of the man himself"

डा० बी० के० मजूमदार स्मिथ को उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक इतिहास लिखने वाले राजा राजेन्द्रलाल मित्र, आर० जी० भण्डारकर और रमेशचन्द्र दत्त जसे भारतीय इतिहासकारो की श्रेणी म रखते है जो उनके समकालीन थे। इसके पश्चात राजनीतिक इतिहास प्रस्तुत करने वाले प्राय सभी इतिहासकारो ने जिनमें सी० वी० वद्य, एच० सी० रायचौधरी एच० सी० रे, के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री आदि प्रमुख हैं स्मिथ द्वारा प्रस्तुत इतिहास को नवीन तथ्यो एव दृष्टिकोणो के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुत डा० बी० के० मजमदार न ठीक ही लिखा ह कि, 'प्राचीन भारतीय इतिहास के किसी भी भाग पर काम करने वाले लोगो न स्मिथ के ऋण को अवश्य स्वीकार किया ह चाहे किसी न उनकी मान्यताओं का समथन किया हो अथवा उनकी मान्यताओं की आलोचना की हो।"

इस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में वी० ए० स्मिथ का महत्वपूर्ण योगदान ह। डॉ० बी० के० मजूमदार ने उनके द्वारा भारतीय इतिहास को दिये गय योगदान का मूल्याकन करते हुए उन्हें 'आधुनिक भारत का एक ख्यातिलब्ध इतिहासकार कहा ह जो समीचीन ह। किन्तु उनक सम्ब ध में यह कहना कि उन्होंने अपने इतिहास लेखन के माध्यम से साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का पोषण किया अनुचित नहीं।

●

अध्याय चार

काशीप्रसाद जायसवाल (१८८१-१९३७)

काशीप्रसाद जायसवाल का जन्म १८८१ ई० में मानभूम (Manbhum) जिले के झाल्दा (Jhalda) नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता उत्तर-प्रदेश के मिर्जापुर जिले के एक बड़े व्यापारी थे। १९३७ ई० अपनी इहलीला समाप्त करने के पूर्व जायसवाल ने भारती विद्या की जो सेवा की उसके सम्बन्ध में डॉ० बी० पी० सिनहा का कथन है कि—



"During a moderately short life of 57 years K P Jayaswal had carved for himself a respectable niche in the temple of Indological research"

सम्पन्न परिवार में उत्पन्न होने के कारण जायसवाल के लिए शिक्षा ग्रहण करने का उत्तम प्रबन्ध हुआ। मिर्जापुर के लन्दन मिशन स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात उन्होंने आक्सफोर्ड से इतिहास विषय में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की और वहीं से बार एट ला भी किया। १९०९ में भारत लौटकर उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रवक्ता के रूप में कार्य करना चाहा किन्तु एक सच्चे देशभक्त के रूप में तत्कालीन राजनीति से निरपेक्ष न रहने के रहने के कारण सरकारी हस्तक्षेप से वे नियुक्ति प्राप्त करने में असफल रहे। सरकार ने उन्हें एक 'खतरनाक क्रान्तिकारी' (Dangerous revolutionist) घोषित कर दिया था क्योंकि वह मानती थी कि जब जायसवाल इग्लैण्ड में कानून का अध्ययन कर रहे थे, तब वे वहाँ भारत में ब्रिटिश शासन का विरोध करनेवाले इण्डिया हाउस के क्रान्तिकारियों के गण में सम्मिलित हो गये थे। किन्तु वास्तव में यह पूर्णत सत्य नहीं था जैसा कि उनके सम्बन्ध में सरकार ने समझा था। डॉ० बी० पी० सिनहा का कथन है कि—

'He was a bright intellectual anxious to serve the Goddess of learning and make researches to illuminate the dark corners of the country's ancient history"

कलकत्ता विश्वविद्यालय में नियुक्ति न पाने पर जायसवाल ने १९११ ई० में वकालत के पेशे में रहने का निश्चय किया और कलकत्ता हाईकोर्ट में एडवोकेट के रूप में कार्य करने लगे। किन्तु यहाँ भी राजनीतिक क्रियाकलापों से सम्बद्ध बताकर सरकार द्वारा प्रताड़ित किये जाने से तथा क्रियाकलापों के लिए मानसिक शान्ति के अभाव के कारण शीघ्र ही जायसवाल पटना आ गये और यहाँ के हाईकोर्ट में कार्यरत हो गये। यहाँ भी उन्हें शीघ्र शान्ति नहीं मिली। परन्तु अन्ततः १९१४ ई० में सर आशुतोष मुखर्जी के हस्तक्षेप से सरकार द्वारा जायसवाल के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाना स्वीकार किया गया और उन्होंने भी स्वयं को सक्रिय राजनीति से पृथक रखने का निश्चय किया। इस दौरान उनके पेशे और देश के ऐतिहासिक अध्ययन को गम्भीर क्षति पहुँची।

प्रमुख कृतित्व

सक्रिय राजनीति से पृथक रहने पर राष्ट्रीय आन्दोलन को जो भी क्षति पहुँची उसकी पूर्ति जायसवाल ने शैक्षिक एवं सांस्कृतिक जगत को समृद्ध कर की। उनके कृतित्व का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

१ बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी की स्थापना—१९१४ ई० में जायसवाल ने बिहार और उड़ीसा (अब केवल बिहार) रिसर्च सोसाइटी की स्थापना की जिसने प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के अनुसन्धान में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 'जर्नल आफ दि बिहार एण्ड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी' नामक शोध पत्रिका का भी प्रारम्भ किया जिसका प्रथम प्रकाशन १९१५ ई० में हुआ। जायसवाल ने अनेक वर्षों तक न केवल इसका सम्पादन ही किया अपितु अपने अधिकांश लेख भी इसी में प्रकाशित कराये। मृत्युपर्यन्त वे इस शोध संस्थान के संचालक मण्डल के सदस्य रहे।

२ *पटना संग्रहालय की स्थापना*—*पटना संग्रहालय की स्थापना में* जायसवाल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। प्रारम्भ में कुछ पुरावशेषों के साथ इसकी स्थापना गवर्नमेंट हाउस के एक कमरे में हुई जो बाद में हाईकोर्ट में स्थानान्तरित हो गया। जायसवाल के कुशल निर्देशन एवं आग्रहयुक्त प्रयास से इस संग्रहालय को न केवल प्रसिद्धि मिली अपितु उसे स्वतन्त्र भव्य भवन भी प्राप्त हो गया। आज यह संग्रहालय न केवल बिहार राज्य का प्रधान संग्रहालय है वरन् अत्यन्त समृद्ध भी है। जायसवाल इस संग्रहालय की प्रबन्ध समिति के सदस्य के साथ-साथ बाद में इसके अध्यक्ष भी रहे। १९२४ में जब बोध गया

बौद्ध मन्दिर जाँच समिति का गठन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और हिन्दू महासभा की ओर से किया गया तब डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के साथ जायसवाल भी इसके सदस्य थे।

३ ऐतिहासिक कृतियाँ—भारती विद्या सम्बन्धी जायसवाल के अनुसन्धान विविध हैं। १९१३ में उनका प्रथम लेख 'माडर्न रिव्यू' में 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू हिन्दू पालिटी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। बाद में इस शीर्षक के उनके विभिन्न लेख १९२४ में हिन्दू पालिटी' नामक ग्रन्थ में संगृहीत कर प्रकाशित हुए। १९११ से १९१३ के मध्य जायसवाल ने 'कलकत्ता वीकली नोटस' में प्राचीन हिन्दू विधि से सम्बन्धित कुछ लेख लिखे जिनकी प्रशंसा देश विदेश के विद्वानों द्वारा हुई। इन लेखों के कारण ही १९१७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उनको प्राचीन हिन्दू विधि के विभिन्न पक्षों पर व्याख्यान देने हेतु आमन्त्रित किया। जायसवाल ने इस निमित्त टैगोर ला लैक्चर्स के अन्तर्गत मनु एण्ड याज्ञवल्क्य' शीर्षक से १२ व्याख्यान दिये। यह १९१९ में प्रकाशित हुआ।

किन्तु जायसवाल ने अपने अध्ययन और शोध का क्षेत्र संविधान एवं विधि को ही नहीं रखा वरन् उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति के विस्तृत क्षेत्र की विभिन्न शाखाओं पर कार्य कर, जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी' में प्रकाशित कराया। शैशुनाग एण्ड मौर्यन क्रोनोलॉजी एण्ड दि डेट ऑफ दि बुद्धाज निर्वाण, इम्पायर आफ बिन्दुसार' 'क्रोनोलॉजिकल समरी इन पुरानिक क्रोनिकल्स एण्ड दि कलि युग एरा', दि बृहद्रथ क्रोनोलांजी १७२७ बी० सी०–७२७ बी० सी०' न्यिाइज्ड डेट ऑन दि ब्राह्मण इम्पायर', 'सेम सक्रिफिसेस एण्ड कुषाण क्रोनोलॉजी', 'कन्ट्रीब्यूशन टु दि हिस्ट्री आफ मिथिला' 'ऑन दि रूल आफ पुष्यमित्र शुंग', 'शक सातवाहन हिस्ट्री' विषयक उनके लेख प्रमुख हैं।

राजनीतिक इतिहास के क्षेत्र में जायसवाल का महत्त्वपूर्ण योगदान 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया १५० ए० डी० टू ३५० ए० डी०' है। भारतीय इतिहास में अन्धकार युग माने जानेवाले इस काल को उन्होंने नाग-वाकाटक युग से प्रकाशित किया। राजनीतिक इतिहास से सम्बन्धित उनके अन्तिम लेख क्रोनालाजी एण्ड हिस्ट्री आफ ६०० बी० सी०–८८० ए० डी०' और चन्द्रगुप्त II विक्रमादित्य एण्ड हिज प्रेडेसेसर' विषयक रहे।

४ अभिलेखों से सम्बन्धित कार्य—प्राचीन भारतीय अभिलेख के अध्ययन में जायसवाल का योगदान महत्त्वपूर्ण है। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख और अशोक के अभिलेखों पर उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण लेख लिखे। भुवनेश्वर मन्दिर के

अभिलेखों, अयोध्या का शुंग अभिलेख, समुद्रगुप्त का इलाहाबाद अभिलेख, राजगीर का प्रतिमा अभिलेख आदि अभिलेखों का *अध्ययन भी* उन्होंने प्रस्तुत किया।

५. मुद्रातत्त्व सम्बन्धी कार्य—मुद्रातत्त्व के अध्ययन में भी जायसवाल का महत्त्वपूर्ण योगदान है। 'पुराण क्वायन एण्ड दि डेट ऑफ मानव धर्मशास्त्र'; 'सिक्स यूनिक सिल्वर क्वायन्स ऑफ दि शुंग'; 'सम हिन्दू क्वायन्स ऑफ प्री-*क्रिश्चियन सेन्चुरीज'; 'न्यू क्वायन्स ऑफ दि नाग वाकाटक पीरिएड'; 'न्यू-*मिस्मेटिक नोट्स आन सम हिन्दू क्वायन्स ऑफ प्री-क्रिश्चियन सेन्चुरीज' विषयक लेख मुद्रातत्त्व पर लिखे गये उनके महत्त्वपूर्ण लेख हैं। राजनीतिक इतिहास से सम्बन्धित अपने प्रमुख ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया १५० ए० डी० टू ३५० ए० *डी०' में भी उन्होंने गंगा घाटी की अनगिनत मुद्राओं का विवेचन किया है।* जायसवाल ने कुछ आहत मुद्राओं (Punch marked coins) को मौर्यों से सम्बन्धित कर एक सर्वथा अभिनव मत का प्रतिपादन किया जिसका तत्कालीन एशियाटिक सोसाइटी के विद्वानों द्वारा आलोचना की गयी। किन्तु आज यह *मत मुद्रातत्त्व के प्रख्यात् विद्वानों जिनमें डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त आदि का* नाम उल्लेखनीय है, द्वारा श्रद्धेय एवं मान्य किया गया है।

६. अप्रकाशित ग्रन्थों का सम्पादन—जायसवाल ने अनेक अप्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों का सम्पादन भी विद्वत्तापूर्ण व्याख्याओं सहित किया। 'चण्डेश्वर कृत राजनीतिरत्नाकर', 'कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर भट्टस्वामी की टीका' और 'गार्गी संहिता' उनके द्वारा सम्पादित प्रमुख ग्रन्थ हैं। किन्तु इस क्षेत्र में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के साथ 'आर्य मंजुश्री मूलकल्प' का सम्पादन उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। उन्होंने लासन के 'हिस्ट्री ऑफ *इण्डियन कामर्स' का अनुवाद भी प्रकाशित कराया।*

७. अन्य कृतियाँ—अपने देशभक्तिपूर्ण ग्रन्थ 'हिन्दू पॉलिटी' से जायसवाल को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने इस क्षेत्र में अपना अनुसंधान जारी रखते हुए 'न्यू लाइट ऑन हिन्दू पोलिटिकल साइन्स लिटेरेचर' शीर्षक से लेख लिखा। उन्होंने एतद्‌विषयक अपने एक अन्य लेख में यह मत *प्रतिपादित किया था कि* चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के एक मन्त्री शिखर ने राजशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा था। इनके अतिरिक्त जायसवाल ने 'ए हिन्दू टेक्स्ट आन पेंटिंग' और 'ए नोट ऑन सरटेन संस्कृत ज्याग्रैफिकल एण्ड इथिक टर्म्स्' विषयक लेख भी लिखा।

इस प्रकार जायसवाल की कृतियाँ उनके प्राचीन भारतीय इतिहास और स्कृति सम्बन्धी विस्तृत अध्ययन एवं ज्ञान को सूचित करती हैं।

तिहासिक शोध पद्धति एवं विचार

पेशे से एडवोकेट होने के कारण जायसवाल ने अपने इतिहास लेखन में भी क एडवोकेट की पद्धति को अपनाया है। इसमें वे पहले किसी समस्या को वयं एक प्रश्न के रूप में उठाते हैं और तदनन्तर एक चतुर एडवोकेट की भाँति पने पक्ष में उसका समाधान समस्त सम्भावित सशक्त-असशक्त प्रमाणों द्वारा करते हैं। प्रायः जायसवाल अपनी समस्त कृतियों का प्रारम्भ लम्बी ऐतिहासिक भूमिका के द्वारा करते हैं। इसके बाद क्रमशः अपने विषय के मुख्य भाग पर हुँच कर निष्कर्ष निकालते हैं। जायसवाल ने अपने इतिहास लेखन में तुलनात्मक द्धति का भी प्रयोग किया है। इसी पद्धति का प्रयोग 'मनु एण्ड याज्ञवल्क्य' के प्रथम व्याख्यान 'हिन्दू ला बिफोर दि कोड ऑफ मनु' में कर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति के बाद की है।

जायसवाल ने अपनी कृतियों में कहीं भी अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर विचार नहीं किया है। किन्तु डॉ० बी० पी० सिनहा प्रभृति विद्वानों ने उनकी कृतियों का विस्तृत अध्ययन कर उन्हें राष्ट्रीय इतिहासकार (Nationalist Historian) कहा है। डॉ० सिनहा के अनुसार एक उत्कट राष्ट्रवादी के रूप में जायसवाल को राजनीतिक गतिविधियों और संगठनों के अतीत (इतिहास) के प्रति स्वाभिमान था। इसे वह राष्ट्रीय धरोहर समझते थे। वे विदेशी शासन से घृणा करते थे जिसके कारण उन्होंने प्राचीन भारत के विदेशी शासनों की तीव्र निन्दा की। उन्होंने यह कभी भी स्वीकार नहीं किया कि कभी भी कोई विदेशी शासन किसी भी स्थिति में ग्राह्य हो सकता है। प्राचीन भारत के साम्राज्यवादी इतिहासकारों (वी० ए० स्मिथ आदि) के मतों का खण्डन करते हुए जायसवाल ने अपने पाठकों को यह दिखाना चाहा कि भारत में किसी भी विदेशी शासन का कोई भी योगदान नहीं रहा है (हिस्ट्री ऑफ इण्डिया १५० ए० डी० टू ३५० ए० डी०)।

जायसवाल के समय राष्ट्रीय जोश और आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। इसी समय वी० ए० स्मिथ जैसे अंग्रेज इतिहासकार भारत के सम्बन्ध में यह सिद्ध कर रहे थे कि यह सदैव से आपस में झगड़नेवाले वंशानुगत निरंकुश शासन से प्रशासित रहा है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पास आकर्षक विस्तृत चरित्र एवं संसदीय और प्रतिनिधित्व प्रणालीवाली सबसे अच्छी जनतान्त्रिक

संस्थाएँ हैं। ऐसी धारणाओं का खण्डन करना भारत के बुद्धिजीवियों के लिए आवश्यक हो गया था। जायसवाल ने यह सिद्ध किया कि भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही सफल गणतन्त्रों एवं सीमित राजतन्त्रों का अस्तित्व रहा है। उनके अनुसार भारत में गणराज्य कम से कम उत्तर वैदिक काल से ही अस्तित्व में रहे और वे निश्चित रूप से यूनानी गणराज्यों से अत्यन्त शक्तिशाली और बड़े (विस्तृत) थे। उन्होंने यह भी बताया कि भारत में राजतन्त्र वैदिक काल से ही स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नहीं वरन् सीमित एवं उत्तरदायी थे (हिन्दू पॉलिटी)।

जायसवाल के उपर्युक्त ऐतिहासिक दृष्टिकोण की विस्तृत मीमांसा कर डॉ० बी० पी० सिनहा लिखते हैं कि—"If the British boasted of having their large empire and having brought the whole Indian sub-continent under one empire, there was the great Naga-Vakataka empire, succeeded by the greater Gupta empire which had its sway not only over very large parts of India but over the islands of the sea as well. Jayaswal's writings tend to show that we had, all and in good measure, what the British masters claim to have or to bestow. We had our large empires, successful and long-lived republics,........and a constitutionally limited monarchy."

अपने समय के सन्दर्भ में जायसवाल की ऐतिहासिक कृतियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। उन्होंने इनके माध्यम से भारतीय स्रोतों द्वारा कार्य करनेवाले विद्वानों के लिए अत्यन्त व्यापक क्षेत्र तैयार कर दिया था। इसी कारण उनकी मुख्य कृति 'हिन्दू पॉलिटी' इस क्षेत्र के इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शक ग्रन्थ (Pioneering work) माना जाता है। बाद के भारतीय एवं विदेशी इतिहासकारों द्वारा उनके द्वारा स्थापित सिद्धान्तों की मीमांसा एवं परीक्षण किया गया और उनके कुछ निष्कर्ष निर्मूल सिद्ध किये गये अथवा संदेह की दृष्टि से देखे गये (यथा, पौर-जानपद सिद्धान्त, भारशिवों और वाकाटकों का सम्पूर्ण भारत का शासक होना आदि)। इसका कारण बताते हुए डॉ० बी० पी० सिन्हा लिखते हैं कि, "जायसवाल की मुख्य कमजोरी प्राचीन हिन्दुओं के राजनीतिक और संवैधानिक क्षेत्र में शानदार धरोहर के सम्बन्ध में अपने मनचाहे सिद्धान्तों को निर्मित करने में उनके अत्युल्लास और आधुनिक पूर्ण विकसित संवैधानिक विचारों एवं राजनीतिक संगठनों को प्राचीन भारत में खोजने में दृष्टिगत होती

है। इसके लिए वे प्रायः बिना ([illegible] परीक्षण किये ही दुर्बलतम प्रमाणों का प्रयोग बड़े निष्कर्षों की आधारशिला रखने के लिए करते हुए दिखाई देते हैं।"

इन त्रुटियों के होते हुए भी काशीप्रसाद जायसवाल का ऐतिहासिक लेखन अपना अप्रतिम महत्व रखता है। प्राचीन भारतीय गणराज्यों का क्रमबद्ध अध्ययन सर्वप्रथम उन्होंने ही प्रस्तुत किया। राजा के राज्याभिषेक के संवैधानिक महत्व आदि पर भी सर्वप्रथम उन्हीं ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। वस्तुतः यहाँ यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उन्होंने प्राचीन भारतीय संवैधानिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन की आधारशिला रखी जिसका उपयोग बाद के इतिहासकारों द्वारा किया गया। राजनीतिक इतिहास के क्षेत्र में भी उनका योगदान उपेक्ष्य नहीं है। यद्यपि उत्तर भारत में नाग-वाकाटक साम्राज्य के अस्तित्व सम्बन्धी उनकी मान्यता स्वीकृत नहीं हुई तथापि इस सम्बन्ध में उन्होंने अभिलेखों, साहित्य एवं मुद्राओं आदि का जो सर्वप्रथम विवेचन किया वह गुप्तों के उदय के पूर्व भारशिव नागों एवं अन्य नागों के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। वे वी० ए० स्मिथ जैसे इतिहासकारों के इस मत को खण्डित करने में सर्वथा सफल रहे कि कुषाणों एवं आन्ध्रों (सातवाहनों) के बाद तथा गुप्तों के उदय के पूर्व का भारत का इतिहास अन्धकार युग (One of the darkest in the whole range of Indian history) है। इनके अतिरिक्त आर्य मंजुश्री मूलकल्प को प्रकाश में लाने, नेपाल और मिथिला का इतिहास नये साक्ष्यों के आलोक में प्रस्तुत करने तथा अभिलेखों एवं मुद्राओं के क्षेत्र में किये गये उनके कार्यों की गणना भी उनके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक योगदानों में की जा सकती है।

अन्ततः डॉ० बी० पी० सिन्हा ने काशीप्रसाद जायसवाल का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही लिखा है कि—"In the short span of twenty-five *years of his scholarly activities K. P. Jayaswal has left us a* large volume of original research material. Some may often wonder whether if he had waited a little more to evaluate his sources more critically, he could have bequeathed such varied and pioneering contributions. His was the original spade which removed the first earth from the then almost virgin soil, and in this he was naturally a more enthusiastic pioneer than a careful meticulous researcher who waits long to examine

his sources by all canons of scholarly criticism. K.P. Jayaswal appears to be in a hurry to place his ideas, some of them very original and exciting, before the learned people. As a clever advocate he was anxious to stress upon the arguments for his brief, and was not acting as a judge who hears both sides and comes to his conclusions."

अध्याय : पाँच

रमेशचन्द्र मजूमदार (१८८८–१९८०)

भारत के इतिहास-लेखन के इतिहास में रमेशचन्द्र मजूमदार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास में समान रूप से गहरी पैठ रखनेवाले कतिपय इतिहासकारों में वे एक हैं। उनका जन्म ४ दिसम्बर, १८८८ को फरीदपुर जिले (अब बंगला देश में) के खण्डपारा नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता हलधर मजूमदार थे। छात्र जीवन में मजूमदार अत्यन्त मेधावी थे। कटक में इन्ट्रेन्स परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात् इन्होंने प्रेसीडेन्सी कालेज, कलकत्ता से इतिहास विषय में आनर्स के साथ स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। १९०९ में परास्नातक



छात्रवृत्ति प्राप्त कर मजूमदार ने यहीं से १९११ में प्रथम श्रेणी में ही इतिहास विषय में एम० ए० किया। १९१२ में इन्हें 'आन्ध्र–कुषाण युग' विषयक लेख पर 'प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति' प्राप्त हुई।

१९०३ में मजूमदार की नियुक्ति ढाका गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कालेज में प्रवक्ता के पद पर हो गयी किन्तु १९१४ में ही वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में आ गये। यहीं उन्होंने अपना शोध-प्रबन्ध 'कारपोरेट लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया' पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत किया। इस पर उन्हें 'ग्रिफिथ मेमोरियल पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ। १९२१ में मजूमदार ढाका विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर बन कर चले गये। यहीं वे १९३७ में कुलपति (Vice-chancellor) बनाये गये और १९४२ में सेवा निवृत्त हुए।

१९२८ में मजूमदार ने ग्रेटब्रिटेन, हालैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, मिस्र और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की यात्राएँ कीं। इन यात्राओं के दौरान ही उन्हें सर्वप्रथम सुमात्रा, अनाम, कम्बोडिया, स्याम, मलाया आदि देशों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रसार की जानकारी प्राप्त हुई थी।

१९५० में मजूमदार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के इण्डोलॉजी विभाग के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। १९५३–५५ के बीच उन्होंने भारत सरकार द्वारा भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के इतिहास लेखन के लिए बनायी गयी परियोजना का निर्देशन किया। १९५१ में उन्होंने २३वें इण्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरियन्टलिस्ट्स के इण्डोलॉजी प्रभाग की अध्यक्षता की। १९५५ में उनकी नियुक्ति नागपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग में प्रोफेसर के पद पर हुई जहाँ वे १९५५–५९ तक रहे। वे संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो और पैनसेल्वानिया विश्वविद्यालयों में भारतीय इतिहास के विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे। भारतीय विद्याभवन, बम्बई से भी वे सम्बद्ध रहे।

मजूमदार को उनकी योग्यताओं के कारण एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता; एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बाम्बे; रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, लन्दन; भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना आदि संस्थानों की मानद सदस्यता भी प्राप्त हुई। १९६५ में संस्कृत कालेज, कलकत्ता ने उन्हें 'भारतत्त्वभाष्कर' की उपाधि से सम्मानित किया। १९६७ में कलकत्ता और जादवपुर विश्वविद्यालयों ने इन्हें डी० लिट्० की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

प्रमुख कृतियाँ

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि मजूमदार की भारतीय इतिहास के सभी कालों में गहरी पैठ थी। ऐसी स्थिति में उन्होंने विभिन्न कालों से सम्बन्धित ऐतिहासिक कृतियों की रचना की। उनकी मुख्य ऐतिहासिक कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

१. कारपोरेट लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया—प्राचीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित मजूमदार की यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। उन्होने इसकी रचना १९१८ में कलकत्ता विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि के लिए की थी। इसमें मजूमदार यह दावा करते है कि, "सभ्यता की वर्तमान अतिविकसित स्थिति में जो बात सबसे अधिक प्रभावोत्पादक रही है वह है सहकारिता की भावना।.........संस्कृति के इस पक्ष मे वर्तमान भारत बहुत पिछड़ा हुआ है, परन्तु.........प्राचीन काल में परिस्थिति बिल्कुल भिन्न थी। सहकारिता की भावना प्राचीन भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों में बहुत स्पष्ट रूप से विद्यमान थी और सामाजिक तथा धार्मिक जोवन में ही नहीं, राजनीतिक एवं आर्थिक जोवन में भी वह व्याप्त थी।" इस ग्रन्थ में मजूमदार अपने इस दावे के निर्वाह में

पूर्णतः सफल हुए हैं। ग्रन्थ की महत्ता को देखते हुए प्रोफेसर कृष्णदत्त बाजपेयीजी ने 'प्राचीन भारत में संघटित जीवन' शीर्षक से इसको आधिकारिक ढंग से हिन्दी में अनूदित किया है।

२. ऐंशियेण्ट इण्डिया

३. दि वाकाटक गुप्त एज (ए० एस० अल्टेकर के साथ) —यह पुस्तक 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन पीपुल' का छठा खण्ड है। अब यह पुस्तक-माला भारतीय इतिहास कांग्रेस द्वारा नियोजित १२ खण्डवाले इतिहास के साथ सम्मिलित कर दी गयी है।

४. दि क्लासिकल अकाउन्ट्स ऑफ इण्डिया।

५. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल—ए० डी० पुसलकर आदि के सहसम्पादकत्व में १० खण्डों में प्रकाशित भारत का विस्तृत इतिहास इस पुस्तक-माला में सम्मिलित है यह योजना भारतीय इतिहास समिति, बम्बई की है।

६. ऐंशियेण्ट इण्डियन कॉलोनीज इन दि फार ईस्ट

७. हिन्दू कॉलोनीज इन दि फार ईस्ट

८. ऐंशियेण्ट इण्डियन कॉलोनीज इन साउथ ईस्ट एशिया

९. इन्सक्रिप्सन्स ऑफ कम्बुज देश

१०. हिस्ट्री ऑफ ऐंशियेण्ट बंगाल एण्ड ऑफ मेडिवल बंगाल

११. दि अरब इन्वेजन ऑफ इण्डिया

१२. एक्सपैंशन ऑफ आर्यन कल्चर इन ईस्टर्न इण्डिया

१३. हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया

१४. थ्री फेजेज ऑफ इण्डियाज स्ट्रगल ऑफ फ्रीडम

१५. दि रिवोल्ट ऑफ १८५७

१६. हिस्टोरियोग्राफी इन माडर्न इण्डिया (उनके हेरास मेमोरियल लेक्चर्स का संग्रह जिनमें उन्होंने अपनी इतिहास सम्बन्धी मान्यताओं को स्पष्ट किया है।)

१७. 'इण्डियन हिस्टोरियोग्राफी : सम रीसेन्ट ट्रेन्ड्स' (इन्स्टीट्यूट ऑफ हिस्टारिकल स्टडीज, कलकत्ता द्वारा श्रीनगर में १९६८ में आयोजित वार्षिक सम्मेलन में दिया गया अध्यक्षीय भाषण) आदि।

शोध पद्धति एवं ऐतिहासिक विचार

ए० डी० पुसलकर ने रमेशचन्द्र मजूमदार को आर० जी० भण्डारकर, डी० आर० भण्डारकर, एच० सी० रायचौधरी आदि इतिहासकारों की श्रेणी में परिगणित किया है जिन्होंने कटु सत्य (Dry Truth) तक को उजागर करने में हिचक नहीं दिखाया है। इन इतिहासकारों की ही भाँति मजूमदार की भी ऐतिहासिक पद्धति वैज्ञानिक है। साक्ष्यों पर सूक्ष्म दृष्टि एवं उनके सापेक्षिक महत्व पर उन्होंने ध्यान दिया है।

मजूमदार के 'हेरास मेमोरियल लेक्चर्स' तथा 'इण्डियन हिस्टोरियोग्राफी : सम रीसेन्ट ट्रेन्ड्स्' शीर्षक लेख से उनके ऐतिहासिक दृष्टिकोण एवं विचारों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इनमें से दूसरा इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने इतिहास के सम्बन्ध में कहा है कि, "इतिहास का सम्बन्ध सत्य के प्रति आन्तरिक जिज्ञासा है। यह इतिहास के अध्ययन का मौलिक आधार है।" इतिहास की उनकी यह अवधारणा आधुनिक इतिहास लेखन के दो महान दार्शनिकों—नेबूर और रांके के विचारों से प्रभावित है जिनके मतों को वे स्वयं उद्धृत करते हैं। मजूमदार इतिहास की दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, "सत्य, केवल सत्य और पूर्ण सत्य ही इतिहास का लौह-कवच होना चाहिए तथा इसी के आधार पर विभिन्न योजनाओं या प्रतिमानों के विन्यास निर्मित किये जा सकते हैं।" (I take all this to mean that truth, nothing but the truth and the whole truth as far as it may, be ascertained, should form the steel-frame of history, on which you may build a structure according to different plans or patterns.) इस दृष्टिकोण के पोषक प्राचीन भारत के एकमात्र इतिहासकार कल्हण को अपना आदर्श मानते हुए इस दिशा में मजूमदार आधुनिक काल के महान इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार को पाते हैं और उनके द्वारा विभिन्न अवसरों पर व्यक्त किये गये इतिहास सम्बन्धी विचारों से सहमत होते हुए उन्हें उद्धृत करते हैं। १९१५ में सर यदुनाथ सरकार ने कहा था कि, "मैं इस बात की चिन्ता नहीं करता कि सत्य प्रिय है या अप्रिय और आधुनिक घटनाचक्र से सामंजस्य रखता है या नहीं। मैं इस बात की भी जरा सी चिन्ता नहीं करता कि सत्य मेरे देश के यश के लिए आघात है या नहीं। यदि आवश्यकता हुई तो मैं अपने मित्रों और समाज के उपहास एवं आक्षेप को सत्य का उपदेश देने के लिए धैर्यपूर्वक सहन करूँगा। लेकिन फिर भी मैं सत्य का अन्वेषण करूँगा, सत्य को समझूँगा और सत्य को स्वीकार करूँगा। यही एक इतिहासकार का दृढ़

संकल्प होना चाहिए।" (I would not care whether truth is pleasant or unpleasant, and in consonance with or opposed to current views. I would not mind in the least whether truth is or is not a blow to the glory of my country. If necessary, I shall bear a patience the ridicul and slander of friends and society for the sake of preaching truth. But still I shall seek truth, understand truth and accept truth. This should be the firm resolve of a historian.)

इसी प्रकार १९३७ में राष्ट्रीय इतिहास के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये यदुनाथ सरकार के इस कथन से मजूमदार सहमति व्यक्त करते हैं कि, "राष्ट्रीय इतिहास प्रत्येक अन्य इतिहास की भाँति नाम की सार्थकता के साथ और सहजशीलता के योग्य होते हुए, जहाँ तक तथ्यों का सम्बन्ध है सत्य होने चाहिए और उनकी व्याख्या में तार्किक औचित्य होना चाहिए। इसका राष्ट्रीय होना इस बात में निहित नहीं है कि यह अपने देश के अतीत के ऐसे प्रत्येक तथ्य को जो अपमानकर हो समाप्त कर डालने का प्रयास करे अपितु इस बात में निहित है कि यह उन्हें अंगीकार करे और उसी समय संकेत करे कि हमारे देश के उद्गम के अवसरों पर ऐसे दूसरे और अच्छे रूप रहे हैं जो पहले के रूपों को ढक कर आगे बढ़ जाते हैं।.........इस कार्य में एक इतिहासकार को अवश्य ही एक न्यायाधीश के रूप में होना चाहिए। उसे राष्ट्रीय चरित्र के किसी दोष को छिपाना नहीं चाहिए, बल्कि उसे अपने चित्रांकन में उन उच्चस्तरीय विशिष्टताओं को सम्मिलित करना चाहिए जो पूर्व तथ्यों के साथ मिलकर समग्र व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता कर सके।"

(National history, like every other history worthy of the name and deserving to endure, must be true as regards the facts and reasonable in the interpretation of them. It will be national not in the sense that it will try to suppress or whitewash everything in our country's past that is disgracefull, but because it will admit them and at the same time point out that there were other and nobler aspects in the stages of our nation's evolution which offset the former......... In this task the historian must be a judge. He will not suppress any defect

of the national character, but add to his portraiture those higher qualities wich, taken together with the former, help to constitute the entire individual.)

स्वतन्त्रता के पूर्व और पश्चात् के कई दशकों के इतिहास लेखन को मजूमदार ने देखा था। वे इस बात से दुःखित थे कि स्वतन्त्रता के बाद भी इतिहास लेखन उपर्युक्त आदर्शों से हटता जा रहा है तथा प्रशासन भी इतिहासकारों को पद और प्रतिष्ठा से आकर्षित कर रहा है। वे इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते है कि स्वतन्त्रता के बाद शासन द्वारा महात्मा गांधी के अहिंसा दर्शन पर आधारित इतिहास लेखन को प्रेरित किया जा रहा है। परन्तु हम भारतीय इतिहास में 'अश्वमेध', 'दिग्विजय' और 'समरशतविजय' जैसे धार्मिक सिद्धान्तों से अनुमोदित युद्धों की कैसे उपेक्षा कर सकते हैं। इतिहास के ऐसे अंशों को महात्मा गांधी के दर्शन के आधार पर कभी भी व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में आगे मजूमदार लिखते है—

"The net result has been that the oft-quoted phrase 'history is past politics' is likely to be substituted soon by a new phrase 'history is present politics'."

एक लम्बे विवेचन के पश्चात् मजूमदार इतिहास सम्बन्धी अपनी अवधारणा को व्यक्त करते हुए लिखते है कि—

"........history divorced from truth, does not help a nation, its future should be laid on the stable foundations of truth and not on the quick sands of falsehood however alluring it may appear at present." और अन्ततः मजूमदार इतिहासकारों को सचेत करते हुए लिखते हैं कि—

"India is now at the cross-roads and I urge my young friends to choose carefully the path they would like to tread upon."

इस प्रकार राष्ट्रीय और वस्तुनिष्ठा के अनन्य समर्थक (जो स्वयं भी लिखते हैं कि, "I belong to the old school which regards objectivity as the soul of bistory,..... ...") रमेशचन्द्र मजूमदार का भारत के आधुनिक इतिहास लेखन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ●

अध्याय : छः

आनन्द केंतिश कुमारस्वामी (१८७७--१९४१)

प्राचीन भारतीय कला के इतिहास लेखन में आनन्द केंतिश कुमारस्वामी पथिकृत अग्रणी विचारक के रूप में स्थान रखते हैं। पूर्व एवं पश्चिम के कला-विषयक तुलनात्मक अध्ययन को गाम्भीर्य प्रदान करने का सर्वाधिक श्रेय भी उन्हीं को है। संसार को उन्होंने भारतीय कला के अनिर्वचनीय सौन्दर्य का बोध कराया और भारतीय सांस्कृतिक निधि की गरिमा का उन्नयन किया।



आनन्द केंतिश कुमारस्वामी का जन्म कोलम्बो (श्रीलंका) में १८७७ में हुआ था। इनके पिता श्री मुत्तुकुमारस्वामी भारतीय मूल के तमिल और माता एलिज़ाबेथ क्ले बीबी अंग्रेज थीं। जन्म के मात्र दो वर्ष बाद ही पिता की मृत्यु हो जाने पर उनकी माँ उनको लेकर इंग्लैण्ड चली गयीं। इंग्लैण्ड में ही प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर कुमारस्वामी ने लन्दन विश्वविद्यालय से भूगर्भ विज्ञान और वनस्पति विज्ञान में बी० एस-सी० (आनर्स) की डिग्री सन् १९०० में ली। बाद में उन्होंने यहीं से भूगर्भ विज्ञान में डी० एस-सी० की उपाधि भी प्राप्त की। इसी दौरान (१९०३–१९०६) उन्होंने श्रीलंका में मिनरलॉजिकल सर्वे के डाइरेक्टर के रूप में भी कार्य किया। इस प्रकार आनन्द कुमारस्वामी ने एक भूगर्भशास्त्री के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ किया। इसके बाद वे राजनीतिक सुधारक बने, तत्पश्चात् कला के इतिहासकार और अन्ततः कला में 'शाश्वत दर्शन' (फिलोसोफिया पेरेनिस) के व्याख्याकार हो गये।

श्रीलंका सरकार की नौकरी करते हुए आनन्द कुमारस्वामी ने उस द्वीप की सांस्कृतिक एवं सामाजिक सेवा भी की। १९०६ में आनन्द कुमारस्वामी एक अवकाश में भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष और कला सम्बन्धी संस्थाओं का निरीक्षण

१. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट—कुमारस्वामी ने इस ग्रन्थ की रचना १९२० में बोस्टन से पूर्वी देशों—जापान, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया आदि का व्यक्तिगत रूप से भ्रमण कर की थी। इन देशों के भ्रमण से उनको यह अनुभव हुआ था कि इन देशों की कलाओं के विकास में भारतीय कला-आदर्शों का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। यह ग्रन्थ १९२७ में लन्दन से प्रकाशित हुआ। भारत और इण्डोनेशिया की कला के इतिहास में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

२. डान्स ऑफ शिव—कुमारस्वामी ने अपने कला सम्बन्धी १४ निबन्धों का संग्रह इस शीर्षक के अन्तर्गत १९२४ में लन्दन से प्रकाशित कराया था। इसमें उन्होंने न केवल शिव के ताण्डव नृत्य का प्रदर्शन ही किया है अथवा नटराज की मूर्ति का वर्णन या उसके लक्षण दिये हैं वरन् उन्होंने चित्रकला, मूर्तिकला आदि सम्बन्धी विभिन्न विवेचन भी प्रस्तुत किया है जो भारतीय कला को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस ग्रन्थ के आमुख में रोम्या रोलां ने लिखा है कि, "आनन्द कुमारस्वामी रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समान उन प्रमुख भारतीयों में से एक हैं जो पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता से पूर्णतया अवगत हैं पर जिनको एशियाई तथा भारतीय सभ्यता पर गौरव है। उन्होंने इस बात का बीड़ा उठाया है कि वह पाश्चात्य और पूर्वी विचारधारा का समन्वय कर पाश्चात्य और पूर्वी विचारों का प्रादुर्भाव करें, जिससे संसार की मानव जाति का कल्याण हो।""""""आनन्द कुमारस्वामी की इस पुस्तक 'डान्स ऑफ शिव' का ध्येय है—आत्मा की महानता बताना और भारतवर्ष की निधि विचारधारा की महानता बताना जो वहाँ अब तक सुरक्षित है और जिस निधि से सारे संसार का कल्याण हो सकता है, उसको संसार के सामने रखा।"

३. ट्रान्सफार्मेशन ऑफ नेचर इन इण्डियन आर्ट—यह ग्रन्थ आनन्द कुमारस्वामी द्वारा हार्वर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) में समय-समय पर दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है जिन्हें इसी विश्वविद्यालय ने १९३६ में प्रकाशित कराया था। इसमें आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय कला सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विचारों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। भारतीय कला सिद्धान्तों से मिलने वाले जर्मन विद्वान् एकार्ट के चित्रकला-सम्बन्धी विचार, भारतीय चित्रकला का विवेचन, शुक्रनीति के कला सम्बन्धी सिद्धान्त, भारत में मूर्तिकला की उत्पत्ति और कला के स्रोत का इतिहास इसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। कुमारस्वामी की यह कृति तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने पाश्चात्य कला-सिद्धान्तों के साथ भारतीय, चीनी और

जापानी कला-सिद्धान्तों की समानताओं और असमानताओं का निर्देश करते हुए कला विषयक सार्वभौम चिन्तन-पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत की है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही उन्होंने लिखा भी है कि, "पूर्वी और पश्चिमी दृष्टिकोणों को परस्पर सम्बद्ध करते हुए कला-विषयक एक सामान्य सिद्धान्त के लिए आधार प्रस्तुत किया जा रहा है।"

उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त आनन्द कुमारस्वामी के निम्नलिखित ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं—

१. मिरर ऑफ जेस्चर
२. एलिमेन्टस् ऑफ् बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी
३. फीगर्स ऑफ स्पीच और फीगर्स ऑफ थाट
४. दि लिविंग थाट्स ऑफ गौतम दि बुद्धा
५. बुद्धा एण्ड गौस्पल ऑफ बुद्धिज्म
६. मिथ्स् ऑफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स
७. बंगाल स्कूल ऑफ पेंटिंग
८. रिफ्लेक्शन ऑफ इण्डियन एण्ड प्लेटोनिक ट्रैसमाईग्रेंट
९. रिलिजियस बेसिस ऑफ इण्डियन सोसाइटी
१०. कृष्ण एण्ड ओरियन्टल फिलॉसफी ऑफ आर्ट
११. दि एम ऑफ इण्डियन आर्ट
१२. इण्डियन ड्राइंग्स
१३. आर्ट एण्ड स्वदेशी
१४. राजपूत पेंटिंग
१५. दि हिन्दू व्यू ऑफ आर्ट
१६. कैटेलॉग ऑफ इण्डियन आर्ट
१७. यक्षाज्
१८. ए न्यू अप्रोच टू दि वेदाज
१९. एशियाटिक आर्ट
२०. दि मेसेज ऑफ दि ईस्ट

शोध पद्धति एवं ऐतिहासिक विचार

कुमारस्वामी की शोध पद्धति एवं ऐतिहासिक विचारों पर समुचित प्रकाश डाल पाना अत्यन्त कठिन है। वस्तुतः इसके लिए एक स्वतन्त्र शोध-प्रबन्ध और सम्भवतः इससे भी कुछ अधिक की आवश्यकता होगी। इसका कारण

एरिक गिल द्वारा उनकी ७०वीं वर्षगाँठ पर उनके प्रति कहे गये इस कथन से स्पष्ट होता है कि, "औरों ने भी साहित्य, जीवन, धर्म और लक्ष्य के कार्यों के विषय में लिखा है; औरों ने भी शुद्ध और बहुत अच्छी अंग्रेजी में लिखा है; औरों ने भी सुचारु रूप से अंग्रेजी में भाव व्यक्त किये हैं; औरों ने क्रिश्चियेनिटी, हिन्दू धर्म और बौद्धधर्म की व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, औरों ने भी चित्रकला, मूर्तिकला और सौन्दर्यशास्त्र पर लिखा है, औरों ने भी अच्छी और बुरी कला के भेद पर प्रकाश डाला है; औरों का भी ज्ञान भण्डार बहुत बड़ा है; औरों ने भी प्रेम किया है; और लोग भी दयालु और उदार हुए हैं, किन्तु मैंने ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा जिस एक व्यक्ति में उपर्युक्त सभी गुण, प्रतिभाएँ और शक्तियाँ एक साथ मौजूद हों।.........मैं यह पुरजोर शब्दों में कहता हूँ कि आनन्द कुमारस्वामी के सिवाय और किसी दूसरे व्यक्ति ने सत्य (ट्रुथ), कला (आर्ट), जीवन (लाइफ), धर्म (रिलीजन), धार्मिक आचरण (पाइटी) के विषय में इतना गूढ़ ज्ञान और इतनी समझदारी के साथ व्यक्त नहीं किया है।"

फिर भी आनन्द कुमारस्वामी की शोध पद्धति पर एक सतही दृष्टि एवं उनके कतिपय महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विचारों का परिगणन किया जा सकता है। उनकी ऐतिहासिक पद्धति के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि, "आनन्द कुमारस्वामी की बड़ी भारी विशेषता यह है कि वह आलोच्य विषय के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ उसकी निर्माण प्रक्रिया की गहराई में जाते हैं। वह उस तत्त्व दर्शन और श्रद्धाभक्ति को नहीं भुलाते जो ऐसी अपूर्व कृतियों के निर्माण के मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं। हिन्दू और बौद्ध शास्त्रों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था और यह अध्ययन तटस्थ आलोचक का अध्ययन नहीं था। उनमें विचार और रचना प्रदान करने वालों के साथ आन्तरिक सहानुभूति और विश्वास था। भारतीय कला को उन्होंने विश्व में उसकी महिमा के साथ उजागर किया। अद्भुत सूक्ष्म दृष्टि के साथ ही गहरी आध्यात्मिक चेतना ने उन्हें कला का अप्रतिम साधक बना दिया था।"

जैसा कि पहले संकेत किया गया है कि आनन्द कुमारस्वामी के ऐतिहासिक विचारों पर समुचित प्रकाश डाल पाना कठिन है किन्तु उनके कतिपय महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विचारों का संकेत किया जा सकता है। यहाँ उनके एक शिष्य मुकन्दीलाल के इस कथन को सदैव ध्यान में रखना पड़ेगा कि, "आनन्द कुमारस्वामी ने जितनी पुस्तकें लिखीं और व्याख्यान दिये उनकी आधारशिला उनका स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय विचारधारा थी।"

आनन्द कुमारस्वामी जर्मन कला दार्शनिक एकार्ट की कला परिभाषा को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि—"कला (चित्र) किसी वस्तु या विषय का गुण निर्देश, व्याख्या, तात्पर्य और सारांश है। वह चित्र यथावत, लाक्षणिक अथवा दृष्टांत या रूपक और रहस्यात्मक है।" कुमारस्वामी का यह भी मानना है कि—"कला की कई विधियाँ और शैलियाँ हैं किन्तु कला सार्वभौम वाणी है। शैलियाँ तो कलाकार की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र हैं।" एक स्थल पर उन्होंने यह भी लिखा है कि—"इस जगत् में केवल एक ही पुराण विज्ञान, एक ही प्रतिमा विज्ञान तथा एक ही सत्य है जो अपौरुषेय बुद्धि द्वारा अज्ञात काल से हस्तानन्तरित होता आया है।"

"There is only one mythology, one Iconography and one truth, tnat of an uncreated wisdom that has been banded down from time immemorial.)

आनन्द कुमारस्वामी के अनुसार भारतीय कला परम्परागत धर्म सम्बन्धी है और वह शिल्पाचार्यों द्वारा बनाये गये नियमों पर आधारित है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार उसका सृजन होता है। किन्तु इसके साथ ही कुमारस्वामी कला में नवीन विचारधारा और परिवर्तित परिवेश को महत्त्व प्रदान करते हैं।

कुमारस्वामी के अनुसार, "एशियाई विचारों को बिना विकृत किये योरोपीय शब्दावली में प्रस्तुत करना कठिन है।" यही कारण है कि उन्होंने तुलना के उत्साह मे एशियाई कला संकल्पनाओं को विकृत करने की अपेक्षा बौद्धिक ईमानदारी के साथ एशियाई और प्रासंगिक योरोपीय विचारों को इस प्रकार साथ-साथ रखा है कि वे कुतूहलपूर्ण मात्र प्रतीत न हों। इस प्रयास में दृष्टि वास्तविक तथ्यों पर ही रही है। तर्कों का वितंडा खड़ा कर किसी मत को साग्रह स्थापित करन की प्रवृत्ति से उन्होंने सदैव बचने का प्रयास किया है। वे स्पष्टतः इस बात में विश्वास करते हैं कि—'सचेतसां अनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।'

संस्कृत अलंकारशास्त्र की व्यापकता पर विचार करते हुए आनन्द कुमार स्वामी ने यह महत्त्वपूर्ण धारणा व्यक्त की है कि अलंकार सिद्धान्त मुख्यतः काव्य, नाटक, नृत्य और संगीत के प्रसंग में निरूपित होते हुए भी समस्त कलाओं के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ। इसका कारण बताते हुए वे लिखते हैं कि इसकी पारिभाषिक शब्दावली का अधिकांश रंग विषयक अवधारणाओं से युक्त है और इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि अलंकार सिद्धान्त वस्तुतः चित्रकला पर लागू होता है।

रस और ध्वनि के मूल आधार को स्पष्ट करते हुए आनन्द कुमारस्वामी ने यह मान्यता व्यक्त की है कि ये दोनों सिद्धान्त मूलतः आध्यात्मिक हैं और अपनी पद्धति और निष्कर्ष में वेदान्ती हैं, यद्यपि उन दोनों सिद्धान्तों को शुद्ध वेदान्त की अपेक्षा परवर्ती वेदान्त एवं योग की भाषा में व्यक्त किया गया है।

परवर्ती विचारकों ने यह संकेत किया है कि कुमारस्वामी की सौन्दर्य दृष्टि पर अध्यात्म का गहरा रंग था। इसीलिए उन्हें भारतीय कला सिद्धान्तों में प्रायः आध्यात्मरंजित तथ्य ही दृष्टिगत हुए। यहाँ तक कि तत्कालीन बौद्धिक वातावरण के अनुकूल पाश्चात्य अध्येताओं की रुचि को तुष्ट करने के लिए उन्होंने प्राच्य कला की पूर्णतः आध्यात्मिक व्याख्या की। इसीलिए उन्होंने प्राच्य कला शास्त्र की तुलना के लिए योरोप से ईसाई कला-सिद्धान्तों एवं शास्त्रवादी (स्कालेस्टिक) सम्प्रदाय के कला-चिन्तन को प्रस्तुत किया। सम्भवतः उनकी धारणा थी कि दोनों में समानता का आधार धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। इसीलिए उन्होंने पुनर्जागरण की तर्कनिष्ठ ऐहिक और मानववादी परम्परा के आधार पर विकसित आधुनिक सौन्दर्य सिद्धान्तों को प्राच्य कला शास्त्र के साथ तुलनीय नहीं माना और उनके साथ समानता के किसी आधार को ढूँढने का प्रयास नहीं किया। इस विषय में यदि अपवादस्वरूप कोई तथ्य है तो भारतीय साधारणीकरण की तुलना में प्रस्तुत योरोपीय समानुभूति (एम्पैथी) सिद्धान्त है।

आनन्द कुमारस्वामी ने रसानुभूति की व्याख्या भी अध्यात्मप्रधान ही की है। इसी कारण यह आकस्मिक नहीं है कि रसानुभूति के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए उन्होंने मुख्य आधार के रूप में अभिनव गुप्त को स्वीकार न करके साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ को ही चुना है, जिनका रस विवेचन अपेक्षाकृत अध्यात्मोन्मुख है।

आनन्द कुमारस्वामी ने एशियाई कला सम्बन्धी अपने गहन परिचय के आधार पर अध्येताओं के सम्मुख यह भली-भाँति प्रमाणित कर दिया है कि पूर्वी देशों में भी चीन और जापान की अपेक्षा भारत में सौन्दर्यशास्त्रीय समस्याओं का व्यवस्थित चिन्तन अत्यधिक विकसित था।

इनके अतिरिक्त कुमारस्वामी के कुछ अन्य प्रमुख ऐतिहासिक विचार निम्नलिखित हैं—

१. प्राचीन भारतीय ऋषियों के समान ही आनन्द कुमारस्वामी तिथियों के निर्धारण को महत्वहीन समझते है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि,

"तिथियों के निर्धारण में क्या रखा है कि कब कौन पैदा हुआ। देखना तो यह है कि अमुक व्यक्ति या अवतार ने क्या किया, उसके विचार क्या थे, धर्म क्या था और मानव समाज के लिए उसने क्या किया।"

२. आनन्द कुमारस्वामी उन इतिहासकारों के इस विचार से सहमत हैं कि मिथकों एवं सच्ची कथाओं में कोई विरोधी नहीं है। उदाहरणार्थ, उनके अनुसार महाभारत की कथा केवल दो चचेरे भाईयों के बीच के युद्ध मात्र की कथा नहीं है। वास्तव में उसमें वैदिक और पौराणिक कथाओं का संकलन है।

३. *कला सम्बन्धी अपनी धारणा के अनुरूप ही कुमारस्वामी कला इतिहास*-कारों के सीमित कर्त्तव्य बताते हैं। उनका कथन है कि, "कला निरीक्षक और कला इतिहासकारों का कर्त्तव्य साधारण है। उनका काम अपनी योग्यता दिखाना नहीं है अपितु उनका कर्त्तव्य है कि कलाकार की सेवा अच्छी तरह से करें। *उनका कर्त्तव्य कला उपासकों को कला समझने में सहायता करना है।"*

इस प्रकार भारतीय इतिहास विशेषतः भारतीय कला इतिहास को आनन्द कुमारस्वामी की देन अप्रतिम है। श्रीयुत् श्रीप्रकाश के अनुसार, "आनन्द कुमारस्वामी उन महान भारतीयों में से थे, जिन्होंने हमारे इतिहास के एक अन्धकारपूर्ण युग में प्रकट होकर सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में अपने ऐश्वर्य-शाली अतीत का गौरव पहचानने और उस पर गर्व करने का अवसर प्रदान किया जिससे कि हम अपने अतीत के कीर्तिमानों के आधार पर वैसे ही उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकें।" डॉ० रिचर्ड एटिंघसन का कथन है कि, "आनन्द कुमारस्वामी के.......समान विभिन्न विषयों पर इतने प्रकाशन संसार भर में और किसी एक व्यक्ति के नहीं हैं। उनकी खोज और अध्ययन दर्शन शास्त्र, अध्यात्म विद्या, धर्म, प्रतिमा विज्ञान, भारतीय साहित्य, भारतीय कला, इस्लामी कला, मध्यकालीन कला, गन्धर्व विद्या, भू-विज्ञान और विशेषकर समाज *में कला का स्थान आदि विषयों पर है.......।"* बड़ोदा संग्रहालय के क्यूरेटर डॉ० मोयट्स ने उनके विषय में लिखा है कि, "आनन्द कुमारस्वामी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने एशिया की कला और संस्कृति की ओर संसार का ध्यान दिलाया और बताया कि मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन आदिम काल से कैसे परिपक्व हुआ और एशिया की कला एवं संस्कृति पाश्चात्य देशों की कला एवं संस्कृति से कम नहीं है.......।" हैवेल का कथन है कि, "आनन्द कुमारस्वामी ने इस अपरिष्कृत भौतिकतावादी सभ्यता के युग में भारतीय कला-आदर्शों और विज्ञान की व्याख्या करने में और भारतीय कला के आध्यात्मिक रूप को प्रस्तुत करने में सबसे

अधिक भाग लिया है।" कैप्टन ड्यूलुविक का विचार है कि, "आनन्द कुमार स्वामी के द्वारा प्राचीन भारतवासियों के पूर्वजों कि कला आदर्शों तथा उनकी चित्रकला और मूर्तिकला उनके बुद्धि विकास और आध्यात्मिक भावों का प्रकटीकरण हुआ है। उन्होंने प्राचीन भारतीय मान्यताओं को पुनर्स्थापित किया है कि किसी भी राष्ट्र के निर्माता व्यवसायी और राजनीतिज्ञ नहीं अपितु कलाकार और कवि होते हैं।" सानूर्जी सोरावजी ने लिखा है लिखा है कि, "आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय संस्कृति को प्राचीन काल की वंशानुगत परम्परा से जोड़ा है।" अलबर्ट ग्लाइज का कथन है कि, "पूर्वी सभ्यता और खासकर हिन्दू विचार के प्रचार में कुमारस्वामी की बहुत बड़ी देन है।"

आनन्द कुमारस्वामी के भारतीय कला सम्बन्धी निरीक्षण, संशोधन, अनुसंधान और परिश्रम का फल यह हुआ कि भारत में कला के प्रति नवीन अभिरुचि और कला आदर्शों के पोषण का नवयुग प्रारम्भ हुआ। तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में उनका ऐतिहासिक महत्त्व असंदिग्ध है। सर विलियम रोथेन्स टाइन ने लिखा है कि, "आज भारत को प्रथम श्रेणी की कलात्मक शक्ति के रूप में जो स्थान प्राप्त है उसका बहुत कुछ श्रेय आनन्द कुमारस्वामी को है।" तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र के लिए आनन्द कुमारस्वामी के निबन्ध कितने प्रेरणादायी रहे इसका प्रमाण टामस मुनरो का यह कथन है कि इस शताब्दी के तीसरे दशक में जब उसने भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन प्रारम्भ किया तो आनन्द कुमारस्वामी के निबन्ध ही उसके मुख्य मार्गदर्शक बने। उसने लिखा है कि, "........जब भी वे भारतीय कला और उसके मूल में निहित विचारों के सम्बन्ध में लिखते थे तो मुझे एक गहन अध्ययन से युक्त विद्वान और कलामर्मज्ञ के अधिकार का अनुभव होता था। भारतीय कला सम्बन्धी उनका ज्ञान दीर्घ और प्रयत्न अनुभव तथा तीक्ष्ण पर्यवेक्षण पर आधारित था।.........।" आनन्द कुमारस्वामी के कला सम्बन्धी अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि इंग्लैण्ड में भारत सचिव लार्ड बरकन हैड (इण्डियन सोसाइटी, लन्दन, १९१०) जैसे व्यक्ति को यह स्वीकार करना पड़ा कि, "भारतीय कला संसार में सर्वाधिक समृद्ध है। भारतीय कला के समान सौन्दर्य, उदात्त भाव और विपुलता प्राचीन काल से अब तक अन्य किसी देश की कला में नहीं पायी जाती।" अन्ततः उनके शिष्य मुकन्दीलाल का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि, "वास्तव में आनन्द कुमारस्वामी भारतीय कला, संस्कृति और आदर्शों के प्रचार के लिए इस संसार में पधारे थे।"

●

दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी (१९०७–१९६६)

प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकारों में दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी का एक विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्राचीन भारत सम्बन्धी हमारी सैद्धान्तिक समझ को प्रभूत सामग्री प्रदान की है और ऐतिहासिक अनुसंधान को नये आयाम प्रदान किये हैं।



प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन को एक नवीन दिशा प्रदान करने वाले दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी का जन्म सन् १९०७ में गोवा के एक ऐसे परिवार में हुआ था जो ज्ञान और सामाजिक व्यवहार के ऊँचे प्रतिमानों के लिए विख्यात था। उनके पिता धर्मानन्द कोसम्बी सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान थे, जिनसे उन्हें घुमक्कड़ी मनोवृत्ति के साथ-साथ विलक्षण मेधा भी विरासत में प्राप्त हुई थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा भारत में हुई, लेकिन उन्हीं दिनों १९१८ में उनके पिता ने संयुक्त राज्य अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य स्वीकार कर लिया और इसलिए उनकी आगे की शिक्षा कैम्ब्रिज लैटिनस्कूल में हुई। हार्वर्ड विश्वविद्यालय से इन्होंने गणित, इतिहास और भाषाओं में स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

१९२० में भारत लौटने पर उन्होंने कुछ समय बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय में और तत्पश्चात् अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में कार्य किया। १९३२ में उनकी नियुक्ति गणित के प्रोफेसर के रूप में फर्ग्यूसन कालेज, पुना में हुई जहाँ उन्होंने चौदह वर्षों तक कार्य किया। यही वह काल था जब उन्होंने ज्ञान के

विविध क्षेत्रों (गणित, सांख्यिकी, आनुवंशिकी, मुद्रातत्त्व, मार्क्सवादी विचार एवं सिद्धान्त, सामाजिक-आर्थिक इतिहास, बौद्ध संस्कृति, संस्कृत साहित्य की परम्परा, भारतविद्या सम्बन्धी सामान्य अध्ययन, मानवशास्त्र, पुरातत्त्व और प्रागितिहास आदि) में अधिकार प्राप्त करने की अनवरत साधना के साथ एक चिंतक और विद्वान के रूप में अपनी महानता की आधारशिला रखी। १९४७ में वे टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फन्डामेंटल रिसर्च, बम्बई द्वारा गणित के अधिकारी (Chair for Mathematics) पद पर आये जहाँ उन्होंने बाद के सोलह वर्ष व्यतीत किये। विश्व शान्ति समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने पूर्व और पश्चिम के साम्यवादी देशों का भ्रमण भी किया। आधुनिक भारत की यह जाज्वल्यमान मेधा २९ जून, १९६६ को कीर्तिशेष हो गयी।

कोसम्बी की प्रमुख कृतियाँ

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कोसम्बी ने विभिन्न विषयों में दक्षता प्राप्त की थी। तदनुरूप उन्होंने विभिन्न विषयों से सम्बन्धित कृतियों का प्रणयन किया। कुल मिलाकर उन्होंने ४ ग्रन्थों, ५ सम्पादित ग्रन्थों और १२७ लेखों की रचना की। उनकी कृतियों का विस्तृत विवरण वी० वी० गोखले ने 'इण्डियन सोसाइटी : हिस्टॉरिकल प्रॉबिग्स (इन मेमोरी ऑफ डी० डी० कोसम्बी)' नामक ग्रन्थ में 'दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी' शीर्षक अपने लेख में दिया है। किन्तु इतिहास सम्बन्धी उनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

(क) प्रमुख ग्रन्थ

१. 'ऐन इन्ट्रोडक्शन टू दि स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' (१९५६)-कोसम्बी का यह प्रथम प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने भारतीय इतिहास सम्बन्धी अपने दृष्टिकोणों को स्पष्ट किया है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में ए० एल० बैशम का कथन है कि—"His 'An Introduction to the Study of Indian History' is in many respects an epoch-making work, containing brilliantly original ideas on almost every page; if it contains errors and mis-nterpretations here and there, if now and again its author attempts to force his data into a rather doctrinaire pattern, this does not appreciably lessen the significance of this very exciting book, which has stimulated the thought of thousands of students throughout the world."

२. 'दि कल्चर एण्ड सिविलिजेशन ऑफ ऐंशियेण्ट इण्डिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन' (१९६५)-कोसम्बी का यह अन्तिम महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें

उन्होंने भारतीय इतिहास की विभिन्न परम्पराओं के विकास का विवेचन किया है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में वी० वी० गोखले ने लिखा है कि—"........, set the seal of recognition on his vast erudition, his ability to discover basic motives of human civilization and his brilliant powers of exposition."

३. 'एक्सआसप्रेटिंग एसेज : एक्सरसाइज इन दि डाइएलेक्टिकल मेथड' (१९५७)।

४. 'मिथ एण्ड रीयलिटी : स्टडीज इन दि फार्मेशन ऑफ इण्डियन कल्चर' (१९६२)।

(ख) प्रमुख सम्पादित ग्रन्थ

१. 'दि इपीग्राम्स एट्रीब्यूटेड टू भर्तृहरि' (१९४८)
२. 'दि सुभाषित रत्नकोश ऑफ विद्याकर', इन कोलेबरेशन विथ वी० 'गोखले' (१९५७)
३. 'दि चिन्तामणि-सारणिका ऑफ दशबल' (१९५२)

(ग) प्रमुख लेख

अ—मुद्रातत्त्व सम्बन्धी—

१. 'ए स्टैटिस्टिकल स्टडी ऑफ दि वेट्स ऑफ दि ओल्ड इण्डियन पंच-मार्क्ड क्वायन्स' (१९४०)
२. 'ए नोट ऑन टू होर्ड्स ऑफ पंच-मार्क्ड क्वायन्स फाउण्ड एट तक्षशिला' (१९४०)
३. 'ऑन दि स्टडी एण्ड मेट्रोलॉजी ऑफ सिल्वर पंच-मार्क्ड क्वायन्स' (१९४१)
४. 'ऑन दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑफ सिल्वर क्वायन्स इन इण्डिया' (१९४१)
५. 'सिल्वर पंच-मार्क्ड क्वायन्स विथ स्पेशल रिफरेन्स टू दि इस्ट खानदेश होर्ड' (१९४६)
६. 'क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑफ पंच-मार्क्ड क्वायन्स—I : ए री-एक्जामिनेशन ऑफ दि ओल्डर तक्षशिला होर्ड' (१९४८-४९)
७. 'क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑफ पंच-मार्क्ड क्वायन्स—II : दि बोडनायाकनूर होर्ड' (१९५१)

८. 'क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑफ पंच-मार्क्ड क्वायन्स—III : दि पैला होर्ड' (१९५२)

९. 'न्यूमिस्मेटिक्स ऐज ए साइन्स' (१९६६)

बी० डी० चट्टोपाध्याय ने कोसम्बी के मुद्रातत्त्व से सम्बन्धित इन लेखों का प्रकाशन 'इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स' शीर्षक ग्रन्थ में कराया है (१९८१)

(ग) अन्य—

१. 'कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया' (१९४४)
२. 'अर्ली ब्राह्मण एण्ड ब्राह्मणिज्म' (१९४७)
३. 'दि अवतार सैंक्रेटिज्म एण्ड पासिबुल सोर्सेज ऑफ दि भगवद्गीता' (१९४८–४९)
४. मार्क्सिज्म एण्ड ऐंशियेण्ट इण्डियन कल्चर' (१९४९)
५. 'ऑन दि ओरिजिन ऑफ ब्राह्मण गोत्राज' (१९५०)
६. 'ऐंशियेण्ट कोसल एण्ड मगध' (१९५२)
७. 'ब्राह्मण क्लान्स' (१९५३)
८. दि पीरियडाइजेशन ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' (१९५४)
९. 'व्हाट कान्सटीट्यूट्स इण्डियन हिस्ट्री ?' (१९५५)
१०. 'दि बेसिस ऑफ ऐंशियेण्ट इण्डियन हिस्ट्री' (१९५५)
११. 'ऑन दि डेवलपमेण्ट ऑफ फ्यूडलिज्म इन इण्डिया' (१९५६)
१२. 'धेनुकाकट' (१९५७)
१३. 'दि टेक्स्ट ऑफ दि अर्थशास्त्र' (१९५८)
१४. 'इण्डियन फ्यूडल ट्रेड चार्टर्स् (१९५९)
१५. 'प्रिमिटिव कम्यूनिज्म' (१९५९)
१६. 'एट दि क्रासरोड्स: मदर गाडेस कल्ट साइट्स इन ऐंशियेण्ट इण्डिया' (१९६०)
१७. 'सोशल एण्ड इकोनॉमिक आस्पेक्टस् ऑफ दि भगवद्गीता' (१९६१)
१८. 'कनिष्क एण्ड दि शक एरा' (१९६२)
१९. 'पियर्सड् माइक्रोलिथ्स् फ्राम दि वेस्टर्न डेकन प्लाटेयू' (१९६२)
२०. 'मेगालिथ्स् इन दि पूना डिस्ट्रिक्ट' (१९६२)
२१. 'कम्बाइन्ड मेथड्स इन इण्डोलॉजी' (१९६३)
२२. 'प्रीहिस्टॉरिक रॉक इन्ग्रेविंग्स् नियर पूना' (१९६३)
२३. 'दि बिगिनिंग ऑफ दि आइरन एज इन इण्डिया' (१९६३)
२४. 'दि ऑटोक्थनस एलीमेन्ट इन दि महाभारत' (१९६४)

२५. 'दि हिस्टॉरिकल कृष्ण' (१९६५)
२६. 'लिविंग प्रीहिस्ट्री इन इण्डिया' (१९६७)।

किन्तु कोसम्बी के प्रायः सभी ऐतिहासिक अनुसंधानों के परिणामों का समाहार ऊपर उल्लिखित उनके प्रथम दो ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

शोध पद्धति एवं ऐतिहासिक विचार

बहुमुखी प्रतिभा के धनी दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी मानव समाज की व्याख्या करने और उसमें होनेवाले परिवर्तनों के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्त में विश्वास करते थे। इसी कारण इतिहास को पारिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है कि—"उत्पादन के साधनों और सम्बन्धों में होनेवाले परिवर्तनों का कालक्रम से प्रस्तुत किया गया विवरण ही इतिहास है।"

(History is the presentation in chronological order of successive changes in the means and relations of production.)

कोसम्बी के अनुसार प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अकस्मात् दृष्टिगत होने वाले वैयक्तिक एवं घटनामूलक विवरणों को 'एक रोमानी कल्पित कथानक' या 'भारतीय रेलों की समय-सारिणी' के रूप में देखना चाहिए। इस बात पर वे जोर देकर कहते हैं कि, "यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कौन राजा था या किसी क्षेत्र में कोई राजा था अथवा नहीं, अपितु महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी क्षेत्र में रहने वाली जनता के द्वारा उस समय भारी या हल्के हल का प्रयोग किया जाता था अथवा नहीं। शासन परिवर्तनों का अध्ययन केवल इस दृष्टि से किया जाना चाहिए कि उससे उत्पादन के आधारों में किस प्रकार शक्तिशाली परिवर्तन हुए।"

किन्तु मार्क्सवादी सिद्धान्त में विश्वास करने वाले कोसम्बी की इतिहास पद्धति डांगे, हुसैनी आदि मार्क्सवादी इतिहासकारों से भिन्न है जिन्होंने मार्क्स और एंजेल द्वारा स्थापित सिद्धान्त के आधार पर भारतीय इतिहास की स्पष्टतः एकसूत्रीय (Unilinear) व्याख्या की है। कोसम्बी का कथन है कि, "भारतीय इतिहास को एक सुनिश्चित ढाँचे में ठीक-ठीक प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।" (Indian history does not fit precisely into this rigid framework.) उदाहरणार्थ उनके अनुसार प्राचीन भारतीय समाज को यूनान और रोम के दासता वाले चरित्र के आधार पर व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कोसम्बी की ऐतिहासिक पद्धति मार्क्सवादी इतिहासकारों की पद्धति से कई प्रकार से भिन्नता रखती है। वस्तुतः उनकी ऐतिहासिक

पद्धति के सम्बन्ध में द्विजेन्द्रनारायणझा का यह कथन अत्यन्त समीचीन है कि उन्होंने (कोसम्बी ने) मार्क्सवाद को 'विचार के विकल्प' (Substitute of thinking) के रूप में न ग्रहणकर 'विश्लेषण के हथियार' (tool of analysis) के रूप में ग्रहण किया है जैसा कि गार्डेन चाइल्ड ने विशाल पुरातात्त्विक सामग्री की व्याख्या के लिए किया था।

अपनी पद्धति के अनुरूप कोसम्बी प्राचीन भारतीय इतिहास की पुनर्रचना करने में अत्यन्त कठिनाई का अनुभव करते हैं क्योंकि उनके अनुसार "भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में लिखित स्रोत नहीं के बराबर हैं।" उनके विचार से भारतीय इतिहास से सम्बन्धित जो भी लिखित साक्ष्य विद्यमान हैं वे धार्मिक एवं कर्मकाण्डीय विवरणों से इतने आवृत हैं कि उनसे इतिहास निर्माण के लिए *तत्कालीन भारतीय समाज की वास्तविक संरचना का ज्ञान करना आवश्यक हो* जाता है। उनका यह मानना है कि पुरातत्त्वविज्ञान और नृतत्त्वविज्ञान से ही ऐसा सम्भव हो सकता है। पुरातत्त्व से लिखित साक्ष्यों की पुष्टि होती है तथा उनसे तत्कालीन समाज के वास्तविक जीवन का ज्ञान होता है। किन्तु भारतीय सन्दर्भ में वे इस दिशा में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं, क्योंकि भारत में पुरातत्त्व के पूर्ण विकास का अभाव है। लेकिन वे यह विश्वास करते हैं कि भारत में उपलब्ध नृतत्त्वशास्त्रीय साक्ष्यों से इतिहास का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। नृतत्त्वशास्त्रीय साक्ष्यों पर कोसम्बी ने अत्यधिक बल दिया है। इस प्रकार कोसम्बी अपने इतिहास निर्माण के लिए लिखित साक्ष्यों का उपयोग पुरातात्त्विक साक्ष्यों के साथ तथा इनका निरीक्षण नृतत्त्वशास्त्रीय साक्ष्यों से करते हैं।

*कोसम्बी ने भारत के प्राचीनतम प्राप्त सिक्कों—आहत सिक्कों (Punch-*marked coins)—के अध्ययन के लिए अन्तरानुशासनिक (inter-disciplinary) दृष्टिकोण का भी प्रयोग किया है। *गणित के विद्वान होने के कारण* उन्होंने इनका अध्ययन सांख्यिकी के आधार पर किया है। उनके इस अध्ययन के महत्त्व के सम्बन्ध में द्विजेन्द्रनारायण झा ने लिखा है कि, "..........., he has opened up a strikingly new and original line of enquiry for future numismatists of India."

इस प्रकार वी० वी० गोखले ने कोसम्बी को ऐतिहासिक दृष्टि एवं पद्धति के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि—

"He believed in the marxist method of interpreting and

changing the human society, but did not hesitate to revise the data of Marx himself in the light of modern research. As an independent thinker with a passionate devotion to scientific research, he seemed to be almost exclusively preoccupied with his own intellectual pursuits."

अपनी विचारधारा और पद्धति के आधार पर कोसम्बी ने प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक चरित्रों की व्याख्या की है। इन चरित्रों में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

१. आदिम समाज और कबीलाई जीवन।

२. सिन्धु घाटी की सभ्यता।

३. आर्यों का आक्रमण जिससे सिन्धु घाटी की सभ्यता के नगरों का नाश हुआ परन्तु जिसके फलस्वरूप पूरब की ओर बस्तियां स्थापित हुई।

४. जाति-व्यवस्था, लोहे के उपकरण, और हल की सहायता से गंगा घाटी का उद्घाटन।

५. मगध और बौद्ध धर्म का उत्कर्ष।

६. मौर्यों की सम्पूर्ण देश पर विजय और ग्रामीण कृषि व्यवस्था पर आधारित एक साम्राज्य की स्थापना।

७. मौर्य साम्राज्य का पतन, दक्षिणापथ में राज्यों का उदय और समुद्रतटवर्ती पट्टियों में बस्तियों की स्थापना।

८. उद्गामी सामन्तवाद का लम्बा दौर और बौद्ध धर्म की अवनति।

कोसम्बी ने प्राचीन भारतीय इतिहास के उक्त चरित्रों की व्याख्या अपनी ऐतिहासिक दृष्टि के आधार पर किस प्रकार की है, इसको एक उदाहरण द्वारा यहाँ स्पष्ट करना संगत होगा :

कोसम्बी के अनुसार आर्य भारत के बाहर से आये थे और उन्होंने सिन्धु घाटी की सभ्यता के नगरों को नष्ट किया। आर्य घुमक्कड़, पशुचारक और ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले थे। वे युद्ध के लिए घोड़ों के रथों तथा भार ढोने के लिए बैलों की गाड़ी का प्रयोग करते थे। कालान्तर में इन्होंने हल और लोहे के प्रयोग में दक्षता प्राप्त कर ली। इस तकनीकी ज्ञान के कारण ही वे जंगलों को साफ करते हुए पूरब की ओर बढ़े। लोह-प्रविधि के ज्ञान के कारण ही वे अपने पहले के निवासियों से उत्पादन और युद्ध में श्रेष्ठ रहे।

प्राचीन भारतीय इतिहास के उपर्युक्त चरित्रों की व्याख्या के अतिरिक्त कोसम्बी ने अपने ग्रन्थों में अन्य अनेक ऐतिहासिक निष्कर्षों को भी प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ, उनके अनुसार मौर्य शासक मोर टोटम (peacock totem) से सम्बन्धित हैं।

अन्य मार्क्सवादी इतिहासकारों की ही भाँति कोसम्बी के ऐतिहासिक दृष्टिकोण और निष्कर्षों की भी आलोचना हुई है। किन्तु यदि हम यहाँ कोसम्बी के मार्क्सवादी दृष्टि की समीक्षा करना छोड़ दें, जो विद्वानों के बीच विवाद का अत्यन्त व्यापक विषय है तो भी उनकी ऐतिहासिक व्याख्याओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बन्ध में द्विजेन्द्रनारायण झा ने ठीक ही लिखा है कि—

"His conclusions remain a set of valuable hypatheses which future researchers will do well to test in the light of data available through diversification of sources."

इनके अतिरिक्त भर्तृहरि के काव्य और सुभाषितरत्नकोश का सम्पादन उनको इस क्षेत्र में प्रतिष्ठित तो करता ही है वरन् लघुपाषाणोपकरण (microliths) और वृहत्पाषाणोपकरण (megaliths) के सम्बन्ध में उनका कार्य उनको एक प्रागितिहासज्ञ के रूप में भी प्रतिष्ठित करता है।

कोसम्बी की ऐतिहासिक शोध-पद्धति का प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपनी इस पद्धति के द्वारा अपनी इतिहास-पुनर्रचना को वस्तुनिष्ठता प्रदान की है। इसी कारण डाल रिपे (Dale Riepe) ने उन्हें 'Father of Scientific Indian History' के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए लिखा है कि—

"Indologists will come to appreciate D.D. Kosambi more each decate for he set Indian history on a scientific path."

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में दामोदर धर्मानन्द कोसम्बी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मार्क्सवादी दृष्टिकोण की परम्परा को रेखांकित करनेवाले प्रमुख इतिहासकारों में से एक हैं किन्तु अन्य अनेक इतिहासकारों की ही भाँति वे इन तथ्यों को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि—

"इतिहासकार का कार्य न तो अतीत से प्रेम करना है, न अतीत से छुटकारा पाना, बल्कि वर्तमान को स्पष्ट करने वाली एक कुंजी के रूप में अतीत की गहराई में जाकर उसे खोलकर समझाना है। इतिहासकार का अतीत सम्बन्धी चित्र जब वर्तमान की समस्याओं को समझनेवाली अन्तर्दृष्टि से आलोकित होता है, तभी महान इतिहास रचा जाता है।..........इतिहास से सीखना केवल एकतरफा प्रक्रिया नहीं है। अतीत के प्रकाश में वर्तमान को समझने का अर्थ वर्तमान के प्रकाश में अतीत को समझना भी है। इतिहास का प्रयोजन है—अतीत और वर्तमान के बीच अन्ततः सम्बन्ध द्वारा इन दोनों के बारे में अधिकाधिक गहन जानकारी प्राप्त करते रहना।" ●

कल्हण

कल्हण प्राचीन भारत (बारहवीं शती ई०) का एकमात्र रचनाकार है जिसकी कृति राजतरंगिणी में इतिहास की आधुनिक अवधारणा (modern concept of history) के तत्त्व परिलक्षित होते हैं। इस कारण वह आधुनिक इतिहासकारों के लिए अद्वितीय महत्त्व रखता है। उसकी पद्धति वैज्ञानिक एवं तथ्यपरक थी जिसकी ओर इंगित करते हुए उसने लिखा भी है कि—

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती॥

अर्थात् वही गुणवान् कवि प्रशंसा का पात्र है जो राग-द्वेष से ऊपर उठकर एकमात्र सत्य निरूपण में ही अपनी भाषा का प्रयोग करता है।

जीवन-वृत्त

कल्हण के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। किन्तु उसकी कृति राजतरंगिणी एवं कतिपय अन्य साक्ष्यों के आधार पर इसकी एक धुंधली झलक प्रस्तुत की जा सकती है। उसका जन्म बारहवीं शती के प्रारम्भ में कश्मीर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था जिसका उल्लेख उसने गर्व के साथ किया है। सम्भवतः उसका परिवार ब्राह्मणों के भार्गव परम्परा से सम्बद्ध था जिसका प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन परम्परा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस परम्परा के विभिन्न तत्त्व उसकी कृति में दृष्टिगत होते हैं। उसके पिता चम्पक एक उच्चस्तरीय राज्याधिकारी थे और सम्भवतः वे कश्मीर के लोहारा वंश के शासक हर्ष (१०८९–११०१ ई०) के सलाहकार थे। कल्हण ने संस्कृत एवं विभिन्न शास्त्रों की उच्च शिक्षा ग्रहण की थी और काव्य-रचना में अद्भुत कुशलता प्राप्त कर ली थी। बाणभट्ट का 'हर्षचरित' और बिल्हण का 'विक्रमांकदेवचरित' उसे अत्यन्त प्रिय थे। 'श्रीकण्ठचरित' के रचयिता कवि मंख ने एक कल्याण नामक लेखक के काव्य-कौशल और इतिहास-प्रेम की बड़ी प्रशंसा की है। स्टाइन महोदय ने इस कल्याण का तादात्म्य कल्हण के साथ स्थापित किया है।

राजतरंगिणी का रचनाकाल एवं उसके स्रोत

विभिन्न विद्वानों ने अन्तः साक्ष्य के आधार पर राजतरंगिणी का रचनाकाल ११४८–४९ ई० से ११४९–५० ई० के मध्य निर्धारित किया है। कल्हण ने इसकी रचना में प्रयुक्त विभिन्न स्रोतों का भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उसने अपने पूर्ववर्ती ११ इतिहास लेखकों में से ५ के नाम लिये हैं—सुव्रत, क्षेमेन्द्र, हेलाराज, पद्ममिहिर और छविल्लाकर तथा उनकी विवेचन पद्धति एवं उसकी त्रुटियों पर प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त उसने अनुश्रुतियों (legends), परम्पराओं (traditions) और अपने क्षेत्र कश्मीर पर लिखी गयी प्रमुख रचनाओं, जिसमें नीलमत पुराण प्रमुख है, का उपयोग किया है। किन्तु मन्दिरों एवं अन्य भवनों में उट्टङ्कित अभिलेखों (inscriptions) का उसने युगान्तकारी उपयोग किया है जो इतिहास लेखन की दृष्टि से निश्चित् रूप से प्रगति का सूचक था। अभिलेखों में पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा किये गये भूमिदान (landgrants) तथा धर्मदाय (endowments) सम्बन्धी सूचनाएँ भी सम्मिलित है। इतिहास के तर्कसंगत स्रोत के रूप में अभिलेखों का उपयोग निश्चय ही कल्हण का एक एक अभिनव प्रयोग था।

राजतरंगिणी की विषय-वस्तु

कल्हण ने अपनी रचना राजतरंगिणी मे भू-वैज्ञानिक (Geology) युग से लेकर स्वयं अपने युग तक के कश्मीर के इतिहास का विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें लगभग ८००० श्लोक है तथा यह आठ तरंगों (सर्गों) में विभक्त है।

सर ऑरल स्टाइन तथा ए० एल० बैशम ने इतिहास पद्धति की दृष्टि से राजतरंगिणी की विषयवस्तु को तीन वर्गों में विभक्त किया है। स्टाइन ने प्रथम वर्ग में पहले, दूसरे और तीसरे तरंग; द्वितीय वर्ग में चौथे तरंग तथा तृतीय वर्ग में पाँचवें, छठवें, सातवें एवं आठवें तरंग को रखा है जब कि बैशम प्रथम वर्ग में पहले, दूसरे और तीसरे तरंग; द्वितीय वर्ग में चौथे, पाँचवें एवं छठवें तरंग तथा तृतीय वर्ग में सातवें एवं आठवें तरंग को रखते हैं। किन्तु बैशम का वर्गीकरण अधिक संगत है जो ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है :

प्रथम वर्ग

इस वर्ग में २००० से अधिक वर्षों के इतिहास को सम्मिलित किया गया है। इसमें केवल राजवंशों की सूचियाँ ही प्रायः दी गयी हैं। इस युग के इतिहास-निर्माण के लिए कल्हण ने पौराणिक स्रोतों, अनुश्रुतियों तथा मिथकों (Myths)

का उपयोग किया है । इस युग के राजाओं को उसने प्राचीन महाकाव्यों— रामायण एवं महाभारत के चरित नायकों के सम्बन्धित किया है तथा ऐतिहासिक परम्पराओं को अतिप्राकृतिक तत्वों के साथ भी सम्बद्ध कर दिया है ।

द्वितीय वर्ग

इस वर्ग में कारकोटक तथा उत्पल राजवंशों का इतिहास विवृत्त है । इसे कल्हण ने अपने पूर्वकालीन इतिहासकारों के आधार पर लिखा है जो घटनाओं के समकालीन थे । इस वर्ग से उचित ऐतिहासिक वृत्त उभरना प्रारम्भ होता है । इस युग के बारे में उसकी पकड़ निश्चय ही ऐतिहासिक अभिलेखों तक और अधिक सम्भावना यह है कि बौद्ध स्रोतों तक पहुँची थी ।

तृतीय वर्ग

इस वर्ग में लोहारा राजवंश का इतिहास वर्णित है । इतिहास विवेचन की दृष्टि से यह वर्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इसमें कल्हण ने प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर घटनाओं का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है ।

कल्हण के इतिहास विवेचन का स्वरूप

राजतरंगिणी के अध्ययन से कल्हण के इतिहास लेखन का निम्नलिखित स्वरूप ज्ञात होता है :

१. तिथि का प्रयोग—कल्हण घटनाओं का विवेचन तिथि के साथ करता है । उसने इसके लिए लौकिक संवत् का प्रयोग किया है । वस्तुतः कल्हण प्राचीन भारत का एकमात्र इतिहासकार है जिसने घटनाओं को तिथि के साथ प्रस्तुत किया है ।

२. अनुश्रुतियों पर विश्वास—अपनी रचना के प्रारम्भ में कल्हण, लोक प्रचलित अनुश्रुतियों के आलोचना-दृष्टिविहीन संग्रहकर्ता के रूप में हमारे समक्ष आता है । सम्भवतः अन्य किसी साक्ष्य के अभाव में वह ऐसा करने के लिए विवश था ।

३. घटनाओं का सतर्क विवेचन—किन्तु जैसे-जैसे कल्हण अपने युग के निकट आता जाता है वैसे-वैसे उसकी घटनाओं के प्रति आलोचना-दृष्टि स्पष्ट होती जाती है और वह घटनाओं का सतर्क विवेचन करता है । उदाहरणार्थ, हर्ष की मृत्यु के बाद उसने एक ऐसे युग का अनुभव किया था जिसमें राजनीतिक अस्थिरता का बोल-बाला था । शक्तिशाली सामन्त डामर (Damara) राजाओं के सबसे बड़े विरोधी थे । प्रो० बी० एन० एस० यादव ने डामरों

के इस विरोध को कृपक-विद्रोह सिद्ध करने का प्रयास किया है। कल्हण के राजनीतिक विचारों से यह स्पष्ट होता है कि उसे इस तथ्य की जानकारी थी। इसलिए उसका कथन है कि एक अच्छे राजा को इतना अधिक शक्तिशाली होना चाहिए कि वह समाज के विविध तत्त्वों को नियन्त्रण में रख सके। उसे यह निश्चित कर लेना चाहिए कि कोई भी क्षेत्र, चाहे वह गाँव ही क्यों न हो, सम्पत्ति एकत्र न करने पाये क्योंकि सम्पत्ति राजनीतिक विद्रोह को प्रेरणा देती है। उसने यह भी अनुभव किया था कि भू-स्वामियों की आर्थिक शक्ति ने ही उन्हें इतना शक्तिशाली बना दिया है कि वे राजा को चुनौती दे सकें। उसने नौकरशाही की निन्दा की है, जिसमें अधिकांशतः कायस्थ थे और वे प्रशासन के प्रमुख पदों पर आसीन थे। वह बताता है कि अधिकांश राजनीतिक षड्यन्त्रों के पीछे इन्ही कायस्थों का हाथ था। इसी प्रकार कल्हण राजतन्त्र में आमात्यों का विशेष महत्त्व स्वीकार करता है। साम्राज्ञी दिद्दा की वह घोर आलोचना करता है क्योंकि वह तत्कालीन आचार की दृष्टि से उचित नहीं था। राजा के निर्वाचन की बात का तो वह खिल्ली उड़ाता है। इस प्रकार कल्हण तत्कालीन परिवेश में घटनाओं का सतर्क विवेचन करता है और साथ ही अपने स्वतन्त्र विचारों को भी प्रस्तुत करता है।

कल्हण के इतिहास-विवेचन के दोष

उपर्युक्त विशेषताओं के होते हुए भी कल्हण के इतिहास विवेचन में कतिपय दोष दृष्टिगत होते हैं —

१. तिथियों के सम्बन्ध में सतर्क नहीं—कल्हण के इतिहास-लेखन का एक मुख्य दोष उसका तिथियों के सम्बन्ध में सतर्क न होना है। स्टाइन ने यह सिद्ध किया है कि कल्हण की काल गणना के अनुसार (अशोक, कनिष्क, मिहिरकुल, तोरमाण का काल क्रमशः ११८२ ई० पू०, ७०४–६३४ ई० पू०, प्रथम शताब्दी ई० और २०९–२२२ ई० ठहरता है। इसी प्रकार कहीं-कहीं वह अपने कालक्रम निर्धारण को अनुपयुक्तता की सीमा तक खींचता है। उदाहरणार्थ, उसके अनुसार ५२ राजाओं का राज्य-काल १९६६ वर्ष था। तिथियों के सम्बन्ध में कल्हण की इस प्रकार को असतर्कता सम्भवतः इसलिए है कि ऐसा उसकी रचना के प्रारम्भिक भाग में है जिसके लिए उसे अनैतिहासिक स्रोतों पर ही निर्भर रहना पड़ा था। परन्तु अपनी शेष रचना में भी वह विभिन्न शासन कालों के प्रारम्भ तथा अन्त की तिथियाँ तो देता है जब कि सम्बद्धकाल की प्रमुख घटनाओं की तिथि का उल्लेख नही करता।

धर्म की जड़ें गहरी और दीर्घकालीन थीं। कल्हण के बाद उसकी परम्परा का अनुसरण करने वाले जोनराज की यह सूचना है कि जैनुलआब्दीन (१५वीं शती ई०) ने बौद्ध धर्मावलम्बी सौगत तिलकाचार्य को महत्तम के उच्च पद पर नियुक्त किया था ' तृतीय राजतरंगिणी, श्लोक १०९६)। वस्तुतः यहाँ यह कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि कल्हण के इतिहास वैशिट्य के लिए कश्मीर पर चीनी-तिब्बती प्रभाव और बौद्धधर्म का प्रभाव सहायक कारक थे। इसके लिए निम्नलिखित कारणों को विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है—

१. भारतवर्ष में कश्मीर ही एकमात्र ऐसा क्षेत्र था जहाँ इतिहास लेखन की अपनी विशिष्ट अवधारणा पहले से विद्यमान थी। कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों एवं उनकी कृतियों का उल्लेख किया है। दुर्भाग्यवश इन पूर्ववर्ती इतिहासकारों की कृतियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं। सम्भव है कि कल्हण ने इन्हीं को समायोजित कर अपनी इतिहास कृति को प्रस्तुत किया। उसका कथन भी है कि—'पूर्वैर्बद्धं कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति'। (पूर्वकालीन रचनाकारों द्वारा जो कथा वस्तुएँ निबद्ध कर दी गयी हैं उनका मैं पुनर्लेखन कर रहा हूँ।)

इसके बाद उसका यह भी कथन है कि—

'दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन् भूतार्थवर्णने।
सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः॥'

(इस ग्रन्थ के लिखने की मेरी योजना यह है कि मैं सर्वांगीण पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ जहाँ पुरातन इतिहास लेखकों की रचनाएँ विशृंखलित हैं।)

वास्तव में भौगोलिक दृष्टि से कश्मीर क्षेत्र शेष भारत से कुछ अलगाव लिये हुए था और इस तत्व ने उस क्षेत्र के लोगों को अपनी कुछ निजी विशेषताएँ प्रदान की थी जिनमें विशिष्ट इतिहास चेतना भी एक थी।

२. कल्हण का परिवार राजसत्ता से सम्बन्धित था। उसके पिता चम्पक कश्मीर के शासक हर्ष (१०८९–११०१ ई०) के सलाहकार थे। इससे उसे राजनीतिक गतिविधियों के सूक्ष्म अवलोकन का अवसर मिला था। इसके अतिरिक्त उसका परिवार सम्भवतः भार्गव कुल से सम्बद्ध था जिसका प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में विशिष्ट स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष के बाद कश्मीर में जो शासक आये उनके शासन काल में कल्हण को कोई राजकीय पद नहीं मिला और न ही उनकी ओर से उसे कोई विशेष सहायता ही मिली।

इस कारण भी उसकी कृति अन्य प्रशस्तिपरक कृतियों यथा बाण के हर्षचरित आदि से ऊपर उठ सकी।

३. कल्हण के युग का अशान्त होना भी उसकी रचना के वैशिट्य का एक कारण हो सकता है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कश्मीर में गृहयुद्ध और संघर्ष का युग था। इस अनिश्चय और अव्यवस्था के युग के वातावरण ने कल्हण को इतिहास लिखने के लिए प्रेरित किया होगा। सम्भवतः उसकी इच्छा थी कि लोग अपने अतीत की त्रुटियों से शिक्षा लें। अतीत से शिक्षा देने के लिए उसे परिस्थितियों एवं घटनाओं का विश्लेषण करना पड़ा। इस विश्लेषण ने ही उसकी कृति को भारत की अन्य कृतियों से विशिष्ट बना दिया। यही कारण है कि अपनी रचना के लिए काव्य विधा को अपनाते हुए और उसके रसात्मक गुणों में दिलचस्पी रखते हुए भी वह उसमें ऐतिहासिक सत्य का संयोग भी करना चाहता था। उसने एक कवि को न्यायाधीश के रूप में देखा। ध्यातव्य है कि कवियों के इतिहास लेखन से सम्बद्ध होने की परम्परा भारतवर्ष में पहले से ही विद्यमान थी। उदाहरणार्थ तालगुण्डा अभिलेख का कवि कुब्ज कदम्ब वंश के वर्णन को काव्य की संज्ञा देता है। इसी प्रकार समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का रचयिता हरिषेण अपने को कवि और प्रशस्ति को काव्य की संज्ञा प्रदान करता है।

इस प्रकार कल्हण के इतिहास वैशिट्य का मुख्य कारण कश्मीर में उस प्रकार के इतिहास लेखन परम्परा का विद्यमान होना था। इसके अतिरिक्त कश्मीर पर चीनी-तिब्बती प्रभाव एवं बौद्धधर्म का प्रभाव, कल्हण का राजसत्ता से असम्बद्ध होना तथा तत्कालीन युग का अशान्त होना आदि उसकी रचना के वैशिष्ट्य के सहायक कारक थे।

कल्हण के बाद कश्मीर में जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट और शुक ने उसकी परम्परा को आगे बढ़ाया। किन्तु इनमें से कोई भी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि या महत्ता की दृष्टि से कल्हण की बराबरी न कर सका। ●

स्वतन्त्रता-पूर्व प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास का लेखन

इतिहास की आधुनिक संकल्पना, जो योरोपीय है,[१] के अनुरूप (प्राचीन) भारतीय इतिहास की पुनर्रचना का कार्य अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों से प्रारम्भ हुआ। तब से सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार इसका क्षेत्र सदैव विकसित होता रहा जिसमें इतिहासकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह उसी प्रकार हुआ जैसे प्रत्येक कवि अपने युग का कवि होता है, वैसे ही प्रत्येक *इतिहासकार अपने युग का इतिहासकार होता है। दूसरे शब्दों में कवि की ही* भाँति इतिहासकार की वाणी युग की वाणी होती है। परिणाम-स्वरूप इतिहास *की आधुनिक संकल्पना के अनुरूप प्राचीन भारतीय समाज से सम्बन्धित महत्त्व*-पूर्ण क्षेत्रों--भौगोलिक दशा, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, संवैधानिक व्यवस्था आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है।[२]

यहाँ हमारा उद्देश्य इतिहास की आधुनिक संकल्पना के अनुरूप प्राचीन भारतीय इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सामाजिक इतिहास के स्वतन्त्रतापूर्व लेखन को उसमें आयी विभिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर रेखांकित करना है। इतिहास दार्शनिक कोम्ते, रेनियर और टॉयन्बी आदि ने सामाजिक इतिहास को इतिहास की आधारशिला के रूप में देखा है। किन्तु इस इतिहास को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय अंग्रेज इतिहास दार्शनिक ट्रेवेलियन को है। उसके अनुसार, "*अतीत में मनुष्यों का दैनिक जीवन, विभिन्न वर्गों का पारस्परिक* आर्थिक सम्बन्ध, परिवार का स्वरूप, गृहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण, सांस्कृतिक जीवन, तथा सामान्य परिस्थितियों से उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, वास्तुकला, शिक्षा तथा साहित्य सामाजिक इतिहास के विषय हैं।"[३] संक्षेप में ट्रेवेलियन के अनुसार, "सामाजिक इतिहास वह इतिहास है जिसमें राजनीतिक इतिहास को छोड़ दिया जाता है।"

अपने विवेचन पर आने के पूर्व यह भी जान लेना आवश्यक है कि प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के विभिन्न पक्षों पर एक साथ प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ नगण्य से हैं। सामाजिक इतिहास के प्रायः सभी पक्षों पर प्रकाश डालने वाले पी० वी० काणे के 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' जैसे ग्रन्थ दुर्लभ हैं। सामाजिक

इतिहास के विभिन्न पक्षों पर अलग-अलग प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं किन्तु सभी पक्षों के ग्रन्थों में सन्तुलन नहीं है। उदाहरणार्थ, प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के एक पक्ष—जाति प्रथा पर जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं उतने ग्रन्थ किसी अन्य पक्ष पर नहीं। जे० एच० हटन ने तो अपने ग्रन्थ 'कास्ट इन इण्डिया' में जातिप्रथा-विषयक ग्रन्थों की संख्या पाँच हजार तक गिना दी है।[१] प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के विशाल साहित्य के प्रणयन में इतिहासकारों के अतिरिक्त मानवजातिविदों, समाजशास्त्रियों, सांख्यिकी, विदों, अर्थशास्त्रियों, धर्मप्रचारकों, समाजसुधारकों, प्रशासकों, विधिवेत्ताओं आदि ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

अब हम यहाँ प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के विभिन्न पक्षों पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के आधार पर उनमें कालक्रमानुसार आये विभिन्न दृष्टिकोणों या प्रवृत्तियों को आधार बनाकर स्वतन्त्रता-पूर्व उसका इतिहास निम्नलिखित रूप से रेखांकित कर सकते हैं—

प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास लेखन का प्रारम्भ : प्रशासनिक आवश्यकता

इतिहास की आधुनिक संकल्पना के अनुसार प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के लेखन का प्रारम्भ प्रशासनिक आवश्यकता के कारण हुआ। भारत में आये अंग्रेजों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे यहाँ के समाज से परिचित हों क्योंकि वे यहाँ की विधि-व्यवस्थाओं से परिचित हुए बिना यहाँ ठीक ढंग से शासन नहीं कर सकते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नीतियों में यह भाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। प्राचीन भारतीय इतिहास पर अंग्रेजी भाषा में लिखी गयी एक पुस्तक 'ए कोड ऑफ जेन्टू लाज' जो १७७६ में लन्दन से प्रकाशित हुई, की भूमिका में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि, "भारतीय वाणिज्य के महत्त्व और बंगाल में राज्य की स्थापना के लाभों को इस देश की विधि संहिताएँ अपनाकर ही कायम रखा जा सकता है जिनका विजेताओं की विधियों या हितों से आन्तरिक विरोध नहीं हो।"[२] आधुनिक भारतीय विद्या (इण्डोलॉजी) के जनक स्वीकार किये जानेवाले सर विलियम जोन्स ने १७९४ में मनुस्मृति के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में भी प्रशासनिक आवश्यकता की दृष्टि से प्राचीन भारतीय सामाजिक नियमों का अध्ययन आवश्यक बताया। उनका यह मानना था कि, "यदि इस नीति का पालन किया जाय तो हिन्दू प्रजा के सुनियोजित परिश्रम से ब्रिटेन की सम्पत्ति में भारी वृद्धि हो सकेगी।"[३]

इस समय बंगाल में गवर्नर के साथ-साथ अंग्रेज न्यायाधीशों की भी नियुक्ति हुई। इन न्यायाधीशों के लिए भी यह आवश्यक था कि वे भारतीय विधि का अध्ययन करें। एक अंग्रेज न्यायाधीश एच० टी० कोलब्रुक ने सर विलियम जोन्स की उपर्युक्त कृति के चार वर्ष बाद ही 'भारत की सर्वोत्कृष्ट विधि संहिताओं' के आधार पर प्राचीन भारतीय समाज का अपना एक अध्ययन विभिन्न लेखों के माध्यम से प्रस्तुत किया।" इस प्रकार प्रारम्भ में प्रशासनिक दृष्टिकोण ही प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के लेखन का आधार बना था।

प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास लेखन का अगला चरण : साम्राज्यवादी दृष्टिकोण

प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास लेखन प्रशासनिक आवश्यकता से प्रारम्भ हुआ और शीघ्र ही उसमें साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का प्रवेश हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव को सुदृढ़ करने के लिए अंग्रेज इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास को साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। इस दृष्टिकोण से उन्होंने भारतीय साहित्य और संस्थाओं की प्राचीनता पर आक्षेप तो किया ही, साथ ही साथ उन्होंने यह भी दिखाने का प्रयास किया कि भारतीय संस्कृति के उदात्त पक्ष योरोपीय सभ्यताओं से लिये गये है। इनके अतिरिक्त उन्होंने भारतीय समाज के कतिपय कुत्सित पक्षों को उछालना और उज्ज्वल पक्षों को छिपाना भी प्रारम्भ कर दिया।

प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का समावेश करने वाले इतिहासकारों में सर्वप्रथम नाम जेम्स मिल का आता है। यह घोर साम्राज्यवादी था और भारतीयों के प्रति घोर दुराग्रह रखता था। इसने कोलब्रुक द्वारा प्रस्तुत किये गये भारतीय स्रोतों का उपयोग करके 'दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' की रचना की जो १८२० में प्रकाशित हुई। इसमें उसने लिखा है कि, "नपुंसकों के समान हिन्दू केवल दासत्व के गुणों में अग्रसर होता रहा है। उन्नति के स्तर पर उन गुणों के सम्बन्ध में जिन्हें हम नैतिक चरित्र कहते हैं, हिन्दुओं का स्थान अत्यन्त नीचा है।" वह शूद्रों की अधिकारहीनता का विवेचन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि, "जातिगत ऊँच-नीच की बुरी भावना हिन्दुओं में जैसी विनाशकारी सीमा तक पहुँच गयी है वैसी अन्यत्र कहीं नहीं है।" और वह यह भी बताता है कि, "हिन्दुओं की यह दकियानूसी समाज-व्यवस्था उसके समय भी मौजूद है।"[६] जेम्स मिल के पश्चात् उन्हीं स्रोतों के आधार पर एल्फिंस्टन ने भी साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से 'दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' की रचना की जो १८८१ में प्रकाशित हुआ।

किन्तु साम्राज्यवादी होते हुए भी वह भारतीय समाज के प्रति उतना दुराग्रही नहीं था जितना कि जेम्स मिल। फिर भी अपनी साम्राज्यवादी दृष्टि के कारण भारतीय समाज के कतिपय पक्षों के प्रति वह न्याय नहीं कर सका। उदाहरणार्थ, उसका निष्कर्ष है कि, "प्राचीन भारतीय व्यापार यूनानियों और अरबों के माध्यम से होता था।" तथापि वह यह भी कहता है कि, "कुछ प्राचीन गणराज्यों के सार्वजनिक दासों की अपेक्षा, और वास्तव में मध्ययुगीन कृषि दासों या यथाज्ञात अन्य किसी भी दास वर्ग की अपेक्षा शूद्रों की स्थिति बहुत ही अच्छी थी।" उसने यह भी स्वीकार किया है कि, "उस प्रकार का कोई भी दास वर्ग उसके समय में वर्तमान नहीं रह गया है।"[१]

साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के विरुद्ध प्रतिक्रिया : राष्ट्रीय दृष्टिकोण का उदय

प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप उसमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण का जन्म हुआ। यहाँ (भारत में) प्राचीनकाल की अनेक सामाजिक प्रथाएँ उन्नीसवीं शती में भी प्रचलित थीं जो विश्व, विशेषतः ब्रिटेन के उदीयमान औद्योगिक समाज के समक्ष क्षयोन्मुख एवं जीर्ण प्रतीत हो रही थी। ये सामाजिक प्रथाएँ राष्ट्रीय प्रगति में भी बाधक सिद्ध हो रही थीं। साम्राज्यवादी इतिहासकार प्रायः इन्हीं क्षयोन्मुख एवं जीर्ण प्रथाओं का वर्णन कर भारतवासियों को उनकी हीनता का ज्ञान करा रहे थे। इन सामाजिक प्रथाओं में सती होने की प्रथा, आजीवन वैधव्य, बाल-विवाह, सवर्ण विवाह आदि प्रमुख थे।

फलतः इस ओर राष्ट्रीयता की भावना से भारत के शिक्षित 'बुद्धिजीवियों' का ध्यान आकर्षित हुआ। इन्होंने कुछ क्षयोन्मुख एवं जीर्ण सामाजिक प्रथाओं को तो स्वीकार कर लिया, किन्तु उनके विशिष्ट कारण बताये। साथ ही साथ इन्होंने प्राचीन भारतीय समाज का गौरवपूर्ण और कहीं-कहीं अतिरंजित गौरव-पूर्ण वर्णन किया। अपने इस प्रयास के साथ इन्होंने वर्तमान में प्रचलित प्राचीन-काल की सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने का प्रयास किया। उनका यह प्रयास मुख्यतः दो सिद्धान्तों—समाज सुधारवादी और अतीत का पुनरावर्तनवादी-पर आधारित रहा।

समाज सुधारवादी सिद्धान्त और प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास का लेखन

समाज सुधारवादी सिद्धान्त के पोषक प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत करने वाले इतिहासकारों का यह मानना था कि जो प्राचीन कालीन सामाजिक प्रथाएँ इस समय तक वर्तमान हैं और राष्ट्रीय प्रगति में

बाधक सिद्ध हो रही हैं, वे प्राचीन धर्मशास्त्रीय व्यवस्थाओं पर आधृत हैं। इनमें किसी भी प्रकार का सुधार तभी सरलतापूर्वक हो सकता है जबकि इन सुधारों को भी धर्मसम्मत ही सिद्ध किया जाय। ऐसे समाजवादी राष्ट्रीय सामाजिक इतिहासकारों में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रमेशचन्द्र दत्त और रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

१८१८ में राजा राममोहनराय ने स्त्रियों के सती होने की प्रथा के विरोध में अपना प्रथम लेख प्रकाशित कराया। इस प्रथा के सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि प्रारम्भ में भारतवर्ष में सती-प्रथा का प्रचलन नहीं था। यही कारण है कि वेदों एवं उपनिषदों में इस प्रथा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। बाद में विदेशियों के आधिपत्य के साथ यह प्रथा भारत में प्रचलित हुई और धर्मशास्त्रों ने इसे मान्यता प्रदान की। फिर भी अनेक धर्मशास्त्रकार इसका विरोध करते रहे। अतः धर्मशास्त्रों के ही अनुसार सती होना विधवा स्त्री की मुक्ति का उत्तम मार्ग नहीं है।[१०] इसी प्रकार कुछ समय पश्चात् ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह को प्रचलित कराने के पक्ष में अपना मत प्रकट किया। उन्होंने धर्मशास्त्र साहित्य का मंथन कर विधवा विवाह के पक्ष में प्रमाण उपस्थित किया। उनके अनुसार भारतवर्ष में पहले विधवाओं का पुनर्विवाह प्रचलित था, किन्तु कालान्तर में विशेष कारणों से अप्रचलित हो गया।[११]

रमेशचन्द्र दत्त ने अपनी तीन खण्डों की कृति 'ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन ऐंशियेंट इण्डिया' जो १८८९-९० में प्रकाशित हुई, के माध्यम से समाज सुधारवादी सिद्धान्त के आधार पर सामाजिक इतिहास के लेखन को आगे बढाया। इन्होंने यह कहते हुए कि आज के हिन्दू अपने प्राचीन धर्म का मर्म नहीं समझते हैं, खेद व्यक्त किया है कि आज मदिरापान और दण्डय-अपराध करने पर भी कोई जाति-च्युत नहीं होता; किन्तु विधवा विवाह, असवर्ण विवाह, समुद्र-यात्रा और विदेश-यात्रा आदि के लिए दण्डित किया जाता है। दत्त महोदय ने यह दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया है कि, "किसी भी प्राचीन जाति ने हिन्दुओं से बढ़कर स्त्रियों को सम्मान नहीं दिया।"[१२] "आर्यों को उनकी वर्णव्यवस्था ने आपस में विभाजित नहीं किया अपितु उन्हें स्थानीय निवासियों के साथ एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर दिया।"[१३] १८९१ में आर० भण्डारकर ने बाल-विवाह के विरुद्ध प्राचीन भारतीय साहित्य से प्रमाण प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि, "कन्या का विवाह पूर्ण युवती होने पर ही किया जाना चाहिए।"[१४] उन्होंने प्राचीन काल से चली आ रही विभिन्न सामाजिक बुराइयों

को समाप्त करने के लिए धर्मशास्त्रों से प्रमाण प्रस्तुत किया। इनके सम्बन्ध में उनका कहना था कि, "प्राचीन काल में कन्याओं का विवाह पूर्ण यौवन प्राप्त करने के पश्चात् होता था, अब उनका विवाह पहले ही हो जाता है; उन दिनों विधवाओं का विवाह प्रचलित था, अब यह बिल्कुल बन्द हो गया है; पहले समान वर्णों के बीच खान-पान वर्जित नहीं था, अब असंख्य जातियाँ उस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध नहीं रख सकती हैं।"[११]

अतीत के पुनरावर्तनवादी सिद्धान्त और प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास का लेखन

अतीत के पुनरावर्तनवादी सिद्धान्त के पोषक प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत करने वाले राष्ट्रीय इतिहासकारों का यह मानना था कि वर्तमान की सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने के लिए अतीत कालीन समाज की मान्यताओं की प्रतिष्ठा वर्तमान में करनी होगी। इस सिद्धान्त के जन्मदाता महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। उन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की और प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों पर आधारित अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की। इस ग्रन्थ का उद्देश्य विधवा विवाह और जन्म के आधार पर जाति का खण्डन तथा शूद्रों के वेदाध्ययन के अधिकार का मण्डन आदि करना था।[१२] अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु दयानन्द सरस्वती ने धर्मशास्त्रों के वचन उद्धृत नहीं किये, अपितु उनका यह मानना था कि वर्तमान को इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए वैदिक कालीन समाज की मान्यताओं की स्थापना वतमान में करनी पड़गी। क्योंकि उनका यह मानना था कि वेदों के समय भारतीय समाज व्यवस्था एक आदर्श समाज व्यवस्था थी जिसमें कोई भी बुराई नही थी। धीरे-धीरे विभिन्न कारणों से उसमें अनेक बुराइयाँ आती गयीं जिनमें से अनेक वर्तमान समय में भी प्रचलित हैं।

पाद टिप्पणियाँ

१. कालिंगवुड, आर० जी० : दि आईडिया ऑफ हिस्ट्री, खण्ड १–३।
२. इतिहास के क्षेत्र का यह वर्गीकरण भी आधुनिक है।
३. ट्रेवेलियन, जी० एम० : ए० एल० राउज द्वारा 'दि यूज ऑफ हिस्ट्री' में उद्धृत, पृ० ६२-६३।
४. हटन, जे० एच० : कास्ट इन इण्डिया।

५. हैल्हेड, एन० बी० : 'विवादार्णवसेतु' के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में उद्धृत, पृ० ९।

६. जोन्स, सर विलियम : इंस्टिट्यूट्स ऑफ हिन्दू ला, भूमिका, पृ० १९।

७. कोलब्रुक, एच० टी० : मिस्लेनियस एसेज।

८. मिल, जेम्स : दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० १६६–१६९।

९. एल्फिंसटन, एम० : दि हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३४ और १०७।

१०. राय, राजा राममोहन : दि इंगलिश वर्क्स, जे० सी० घोष द्वारा सम्पादित, भूमिका और पृ० १२३–९२।

११. भण्डारकर, आर० जी० : कलेक्टेड वर्क्स, भाग २, पृ० ४९८ पर उद्धृत।

१२. दत्त, आर० सी० : ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन ऐंशियेंट इण्डिया, खण्ड १, पृ० २५६-५७।

१३. तत्रैव, पृ० २४०-४१।

१४. भण्डारकर, आर० जी० : कलेक्टेड वर्क्स, भाग २, पृ० ५३८–८३।

१५. तत्रैव, पृ० ५२२-२३।

१६. सरस्वती, दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश, अजमेर, संवत् १९६६।

• —

संक्षिप्त ग्रन्थ सूची

Sharma, R.S. (edited) : Indian Society : Historical Probings (in memory of D.D. Kosambi). 1974.

Pathak, V.S. : Ancient Historians of India, 1984.

Sen, S.P. (edited) : Historians and Historiography in Modern India, 1973.

बुद्धप्रकाश : इतिहास दर्शन, १९६२ ।

मुकन्दीलाल : कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी, १९७८ ।

कौशिक, कु० व० सिंह : इतिहास-दर्शन एवं प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन, १९८५ ।

Majumdar, R.K. and Srivastava, A.N. : Historiography, 1985.

Majumdar, R.C. : Historiography in Modern India. 1970.

Philips, C.H. (edited) : Historians of India, Pakistan and Ceylon, 1961.

Ganguly, D.K. : History and Historians in Ancient India, 1984.

Lipsey, Roger : Coomaraswamy : His Life and Work.

सिंह, रघुनाथ : कल्हण कृत राजतरंगिणी का भूमिका सहित हिन्दी भाष्य, प्रथम खण्ड १९७०, द्वितीय खण्ड १९७३ ।

D. D. Kosambi Commemoration Volume, BHU, 1977.

R.C. Majumdar Commemoration Volume, JNSI, 1982.